साधा

प्रस्तावना

...रशील एवं सामाजिक प्राणी है । अपनी ... चारशीलता से ...नने अपने चारों तरफ उपस्थित प्रकृति क... ययन करना प्रारम्भ किया ...सने पृथ्वी पर रहते हुए, स्थावर एवं ज...म जगत् का अन्वेषण किया । उसने पर्वतों, जंगलों, नदियों, वृक्षों, पशुओं और पक्षियों को सूक्ष्मतया देखा और उनके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया । न केवल पृथ्वी की सतह पर, अपितु भूगर्भ में भी पहुँच कर उसने यह जानने की चेष्टा की कि इस दृश्यमान संसार के नीचे दूसरा कौन-सा संसार है । उसकी जिज्ञासा यहीं पर समाप्त नहीं हुई, उसने समुद्रों के अन्तस्तल को भी छान मारा । उसमें रहने वाले असंख्य प्राणियों का उसने ज्ञान प्राप्त किया और जल में डूबी हुई चट्टानों तथा अन्य भौतिक सत्ताओं का भी उसने अध्ययन किया । मनुष्य की जिज्ञासा और आगे बढ़ी । उसने आकाश में उड़ना प्रारम्भ किया । रात्रि के समय नभोमण्डल में बिछे हुए तारा-समूह को उसने देखा और उसको समझने का और वहाँ तक भी पहुँच जाने का प्रयत्न किया । सूर्य और चन्द्र की ज्योतियों को देखकर वह चकाचौंध नहीं हुआ, अपितु उनका रहस्य ढूँढ निकालने के लिए भी वह चञ्चल हो उठा ।

विश्व-खोज की इस प्रवृत्ति ने विचारशील मनुष्य द्वारा कितने ही आविष्कार कराए और उसे भौतिक विज्ञान के गम्भीर अध्ययन के प्रति प्रेरित किया । उसी का फल है कि आज मनुष्य ने न केवल स्थल, अपितु जल और आकाश पर विजय प्राप्त कर ली है । रेल, मोटर, जहाज़, वायुयान आदि अद्भुत आविष्कारों द्वारा भूमण्डल को वश में कर लिया गया है । आकाश तत्त्व में विचरण करने वाले शब्द को भी छोटे-से यन्त्र में नियन्त्रित कर दिया गया है और उसके द्वारा 'एक विश्व' की कल्पना जीवित जाग्रत बना दी गई है । यह सब मनुष्य की विचारशीलता का परिणाम है ।

गया है। अपने देश की बदलती हुई शासन-प्रणाली को सरल तथा सुगम भाषा में समझाने का यत्न किया गया है। उत्तरार्ध में भौतिक विज्ञान का साधारण ज्ञान दिया गया है। आशा है कि विद्यार्थियों को इस पुस्तक के पढ़ने से पूर्ण लाभ होगा और वे अपने साधारण ज्ञान को समुन्नत करने में समर्थ होंगे। लेखक अपने प्रयत्न को सफल समझेंगे, यदि बालक व बालिकाएं इस पुस्तक को पढ़कर अपने देश के भविष्य-निर्माण में अधिक रुचि उत्पन्न करेंगे और अपने में नागरिकता के गुणों को धारण करके देश-सेवा के पुनीत कार्य में संलग्न हो जायंगे।

—लेखक

विषय-सूची

भाग २

भौतिक-विज्ञान

पूर्वार्द्ध

साधारण-ज्ञान-विज्ञान

पूर्वार्द्ध

नागरिक जीवन

१

नागरिकों के कर्त्तव्य और अधिकार

१. नागरिक विज्ञान

जिस देश में हमने जन्म लिया है, जिसमें हमारा पालन पोषण हुआ है, जिसमें हम रहते और व्यवसाय आदि करते हैं, उसके प्रति हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं। कर्त्तव्यों के अतिरिक्त उस देश पर हमारे कुछ अधिकार भी हैं। जो विज्ञान नागरिकों के उन कर्त्तव्य तथा अधिकारों का बोध कराता है, उसे नागरिक-विज्ञान कहते हैं। एक राजनीति-शास्त्र-वेत्ता के शब्दों में, राष्ट्र और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध को बतलाने वाले विज्ञान का नाम नागरिक-विज्ञान है।

आजकल इस विज्ञान का अध्ययन अत्यन्त आ श्यक समझा जाता है, क्योंकि प्रत्येक नागरिक को अपने देश में अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है। विशेषतया जनतन्त्र राष्ट्रों में, जहाँ जनता पर ही शासन का भार है, इस विज्ञान का अधिक महत्त्व है। इन राष्ट्रों में कानून की अवज्ञा करने वाला

प्राचीन यूनान में एथेन्स, स्पार्टा आदि छोटे-छोटे नगर राष्ट्र होते थे। तब आजकल के महान् जातीय राष्ट्रों का विकास न हुआ था। उन नगर-राष्ट्रों में रहने वाले व्यक्ति अपने नगर के शासन में भाग लेते थे और निर्वाचन में वोट देने के अतिरिक्त क्रमश: शासनकर्ता वा मैजिस्ट्रेट का कार्य भी करते थे। यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू के शब्दों में नागरिक उस व्यक्ति का नाम था जो किसी नगर का निवासी हो और उस नगर के शासन-प्रबन्ध में भाग लेता हो।

परन्तु आजकल नगर-राष्ट्र लुप्त हो चुके हैं। उनका स्थान बड़े-बड़े जातीय राष्ट्रों ने ले लिया है, जिसकी आबादी इतनी बढ़ चुकी है कि प्रत्येक व्यक्ति का राष्ट्र के शासन में सीधा भाग लेना असम्भव हो गया है। वह अब केवल परोक्ष रूप में ही मतप्रदान द्वारा शासन-कार्य में भाग ले सकता है।

'नागरिक'—शब्द प्राचीन समय से ज्यों-का-त्यों बना रहा है। 'नागरिक' का अर्थ आज न केवल नगर-निवासी है, अपितु देश-निवासी भी है। उदाहरणार्थ हम देहली के नागरिक होने के अतिरिक्त भारतवर्ष के भी नागरिक हैं। अत: 'नागरिक' परिभाषा के इस अर्थ को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेना चाहिए कि नागरिक नगर-निवासी का ही नाम नहीं, परन्तु साधारणतया देश में रहने वाले उस प्रत्येक व्यक्ति का नाम है जो उसके प्रति भक्ति और प्रेम के भावों को अनुभव करता है। वैसे तो विदेशों के निवासी भी किसी अन्य देश में रह सकते हैं, व्यवसाय आदि कर सकते हैं। और उस देश में अपनी रक्षा आदि का अधिकार भी ले सकते हैं। परन्तु ऐसे विदेशी व्यक्ति उस देश के नागरिक नहीं कहे जा सकते क्योंकि उनके प्रेम और भक्ति

साधारण-ज्ञान-विज्ञान

पूर्वार्द्ध

नागरिक जीवन

१

नागरिकों के कर्त्तव्य और अधिकार

१. नागरिक विज्ञान

जिस देश में हमने जन्म लिया है, जिसमें हमारा पालन पोषण हुआ है, जिसमें हम रहते और व्यवसाय आदि करते हैं, उसके प्रति हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं। कर्त्तव्यों के अतिरिक्त उस देश पर हमारे कुछ अधिकार भी हैं। जो विज्ञान नागरिकों के उन कर्त्तव्य तथा अधिकारों का बोध कराता है, उसे नागरिक-विज्ञान कहते हैं। एक राजनीति-शास्त्र-वेत्ता के शब्दों में, राष्ट्र और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध को बतलाने वाले विज्ञान का नाम नागरिक-विज्ञान है।

आजकल इस विज्ञान का अध्ययन अत्यन्त आ श्यक समझा जाता है, क्योंकि प्रत्येक नागरिक को अपने देश में अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है। विशेषतया जनतन्त्र राष्ट्रों में, जहाँ जनता पर ही शासन का भार है, इस विज्ञान का अधिक महत्त्व है। इन राष्ट्रों में कानून की अवज्ञा करने वाला

व्यक्ति अपनी अवज्ञा करता है, परन्तु इस बात का ज्ञान उसे नहीं होता। यदि वह इस तथ्य को समझ सके कि वह स्वयं शासन-कर्त्ता है, तो वह कदापि अपने शासन का भंग न करे।

हम भारतवासियों को भी स्वदेश के प्रति अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। कभी हमारा देश भी उन्नत हो सकता है। हमें अब स्वतन्त्र होने के बाद, अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों की तरह अग्रगामी बनना है। अतः हमें अपने सामाजिक कर्त्तव्यों को जानना और उनका पालन करना बहुत ज़रूरी है। अपने गांव, कस्बे, नगर, प्रांत एवं देश के प्रति हमें उदासीन वृत्ति से नहीं रहना चाहिए तथा उनके अधिकतम कल्याण की वृद्धि में सर्वथा सचेष्ट और यत्नवान् होना चाहिए।

२. 'नागरिक' शब्द का अर्थ

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रह सकता। यदि वह अकेला रहने लगे तो पहले उसका जी ही न लगेगा, एकान्त स्थान में उसे भय-सा मालूम होगा, फिर वहाँ उसका निर्वाह भी नहीं हो सकता। उसे खाने पहिनने के लिए भोजन-वस्त्र चाहिए; सर्दी, गर्मी और बरसात से बचने के लिए मकान चाहिए; सुख-दुःख में कोई सहायक, बातचीत करने के लिए कोई दूसरा मनुष्य या साथी चाहिए। कोई मनुष्य इन भिन्न-भिन्न प्रकार की आवश्यकताओं को अकेला ही पूरा नहीं कर सकता। वह समाज में रहकर ही उन्नति कर सकता है। समाज में मिलकर रहने से मनुष्यों को एक दूसरे के विचार मालूम होते हैं और उनमें सेवा, सहानुभूति और प्रेम आदि सद्गुणों की वृद्धि होती है। मनुष्यों की इस सामाजिकता के आधार पर ही नागरिकता का जन्म हुआ।

प्राचीन यूनान में एथेन्स, स्पार्टा आदि छोटे-छोटे नगर राष्ट्र होते थे। तब आजकल के महान् जातीय राष्ट्रों का विकास न हुआ था। उन नगर-राष्ट्रों में रहने वाले व्यक्ति अपने नगर के शासन में भाग लेते थे और निर्वाचन में वोट देने के अतिरिक्त क्रमशः शासनकर्ता वा मैजिस्ट्रेट का कार्य भी करते थे। यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू के शब्दों मे नागरिक उस व्यक्ति का नाम था, जो किसी नगर का निवासी हो और उस नगर के शासन-प्रबन्ध में भाग लेता हो।

परन्तु आजकल नगर-राष्ट्र लुप्त हो चुके है। उनका स्थान बड़े-बड़े जातीय राष्ट्रों ने ले लिया है, जिसकी आबादी इतनी बढ़ चुकी है कि प्रत्येक व्यक्ति का राष्ट्र के शासन में सीधा भाग लेना असम्भव हो गया है। वह अब केवल परोक्ष रूप मे ही मतप्रदान द्वारा शासन-कार्य मे भाग ले सकता है।

'नागरिक' शब्द प्राचीन समय से ज्यों-का-त्यों बना रहा है। 'नागरिक' का अर्थ आज न केवल नगर-निवासी है, अपितु देश-निवासी भी है। उदाहरणार्थ हम देहली के नागरिक होने के अतिरिक्त भारतवर्ष के भी नागरिक हैं। अतः 'नागरिक' परिभाषा के इस अर्थ को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेना चाहिए कि नागरिक नगर-निवासी का ही नाम नहीं, परन्तु साधारणतया देश में रहने वाले उस प्रत्येक व्यक्ति का नाम है जो उसके प्रति भक्ति और प्रेम के भावों को अनुभव करता है। वैसे तो विदेशों के निवासी भी किसी अन्य देश में रह सकते हैं, व्यवसाय आदि कर सकते हैं। और उस देश में अपनी रक्षा आदि का अधिकार भी ले सकते हैं। परन्तु ऐसे विदेशी व्यक्ति उस देश के नागरिक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उनके प्रेम और भक्ति

के भाव उस देश के प्रति नहीं, परन्तु किसी और देश के प्रति होते हैं वे लोग अपने शरीर तथा अपनी सम्पत्ति की रक्षा आदि के साधारण अधिकारों को रखते हुए भी विशेष राजनैतिक अधिकारों से वञ्चित रखे जाते हैं। अर्थात् उन्हें निर्वाचन में मत देने का अधिकार, किसी ऊंचे पद को ग्रहण करने का अधिकार और सेना में भरती होने का अधिकार नहीं दिया जाता। वे अतिथि की तरह उस देश में रहते हैं, परन्तु उन्हें किसी कानून आदि को भंग करने का अधिकार नहीं। कानून की अवज्ञा की अवस्था में उन्हें वैसा ही दण्ड दिया जा सकता है, जैसा किसी अन्य नागरिक को।

परन्तु नागरिकता को प्राप्त भी किया जा सकता है। कोई भी विदेशी किसी देश में बहुत समय रहने के बाद, पिछले देश की नागरिकता को त्याग करने की इच्छा प्रकट करने पर तथा नए देश की नागरिकता को स्वीकार करने की अभिलाषा प्रकाशित करने पर उस देश का नागरिक बन सकता है। अमेरिका में योरप के लाखों नर और नारी अपने देशों की नागरिकता को छोड़कर अमेरिका में बहुत समय रहने के बाद अमेरिकन नागरिकता को प्राप्त कर चुके हैं। उन्हें नागरिकता के न केवल साधारण अधिकार, अपितु विशेष राजनैतिक अधिकार भी प्राप्त हो चुके हैं। भारतवर्ष में ही कितने ही विदेशी लोग इस तरह स्थायी रूप में बस चुके हैं कि उन्हें भारतीय नागरिकता के सब अधिकार प्राप्त हैं।

यह भी स्मरण रहे कि नागरिकता में जाति, धर्म अथवा सम्प्रदाय आदि की दृष्टि से भी कोई भेद-भाव नहीं माना जाता। हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी सबके लिये

राष्ट्र में समान अधिकार और कर्त्तव्य है। काले, गोरे, लाल, पीले सब वर्णों के लोग बराबर समझे जाते हैं। हाथ, पांव, नाक, कान, आदि अवयव जिस प्रकार शरीर के भिन्न-भिन्न अंग हैं, उसी प्रकार प्रत्येक आदमी, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या वृद्ध, शिक्षित हो चाहे अशिक्षित, एक धर्म को माने चाहे दूसरे को, वह समाज का अंग है, वह नागरिक है।

२. नागरिकों के अधिकार

जनतन्त्र-शासन-प्रणाली की स्थापना के साथ नागरिकों के अधिकारों में बहुत वृद्धि हुई है। परन्तु यह वृद्धि सब देशों में एक समान नहीं हुई। इंगलैंड, अमेरिका आदि देशों में नागरिकों को जो अधिकार प्राप्त हैं वे उन देशों में, जहाँ एक-तन्त्र शासन है, प्राप्त नहीं। निम्नलिखित कुछ ऐसे अधिकार हैं जो प्राय: सब स्वतन्त्र राष्ट्रों में नागरिकों को प्राप्त हैं:—

स्वरक्षा

प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि वह अपने राष्ट्र से अपने जीवन तथा अपनी सम्पत्ति की रक्षा को प्राप्त करे। प्रत्येक राष्ट्र नागरिकों के जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिये सेना, पुलिस, अदालत आदि का संगठन करता है। जिस राष्ट्र में जीवन तथा सम्पत्ति नहीं, उसे उन्नत राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। अरस्तू के शब्दों में राष्ट्र का जन्म ही जीवन की रक्षा के लिए हुआ है।

धर्म-स्वातन्त्र्य

प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि वह अपने धर्म पर इच्छानुसार आचरण कर सके। राष्ट्र का उसके धर्म में हस्तक्षेप करना अनुचित है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि कोई व्यक्ति अपने धर्माचरण में किसी दूसरे की धर्मभावना को ठेस पहुँचाने की

स्वच्छन्दता रखता है। वह अपने मंदिर, मस्जिद में पूजा वा नमाज़ पढ़ सकता है, परन्तु किसी अन्य धर्मावलम्बी के विश्वासों पर आघात नहीं कर सकता। जिस तरह उसे अपनी धर्मस्वतन्त्रता प्रिय है, उसी तरह उसको समझना चाहिए कि दूसरों को अपनी धर्म-स्वतंत्रता प्रिय है। अतः किसी धर्म पर वृथा आक्षेप न करने चाहिएं और दूसरों के दिल को दुखाना न चाहिए।

विचार-स्वातन्त्र्य

प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों को स्वतन्त्रता पूर्वक प्रकट करने का पूरा अधिकार है। जनतंत्र राष्ट्रों में अधिकार पर बहुत बल दिया जाता है। प्रत्येक नागरिक को भाषण देने तथा लेख द्वारा अपनी सम्मति प्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार स्वीकार किया जाता है।

परन्तु इस अधिकार का भी यह अभिप्राय नहीं कि किसी व्यक्ति को जो मरज़ी लिखने और बोलने की पूरी आज़ादी है। प्रायः सभी स्वतन्त्र-राष्ट्रों में देशविद्रोह, धर्माक्षेप तथा अपमान-जनक भाषण व लेख लिखने की मनाही की जाती है। यह उचित भी है। किसी व्यक्ति को अपने देश के विरुद्ध बग़ावत फैलाने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। और न ही ईश्वर अथवा धार्मिक संस्थाओं पर अनर्गल आक्षेप करने का अधिकार दिया जा सकता है। एवं किसी अन्य व्यक्ति पर जनता में अपमान-जनक दोषारोपण करने का भी अधिकार नहीं दिया जा सकता।

निवास-स्वातन्त्र्य

प्रत्येक व्यक्ति को देश के किसी भाग में जाने और निवास करने की पूरी स्वतन्त्रता है। उसको यह भी अधिकार है कि वह किसी अन्य देश में चला जाए और वहां भी अपने राष्ट्र से अपने हितों की रक्षा

की अपेक्षा करें।

राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को अधिकार है कि वह स्वतन्त्रता-पूर्वक जिस किसी व्यवसाय को करना चाहे कर सके। किसी अन्य व्यक्ति का अनुचित हस्ता-क्षेप राष्ट्र की तरफ से रोका जाना चाहिये। अपने व्यवसाय या व्यापार आदि के कार्य में प्रत्येक नागरिक ऋण ले सकता है अथवा दे सकता है। इस लेने-देने में न्याय को स्थापित रखना राष्ट्र का कर्त्तव्य है।

व्यवसाय-स्वातन्त्र्य

प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि उसके पारिवारिक सम्बन्ध में कोई अनुचित हस्ताक्षेप न किया जाए। भारतवर्ष में मिताक्षरा-कानून के अनुसार पिता का अधिकार है कि वह अपने पुत्र वा पुत्री का अपनी इच्छानुसार विवाह करे। परन्तु आज कल इस अधिकार को सीमित करने का पक्ष अधिक बलवान होता जा रहा है। प्रत्येक बालक वा बालिका को युवावस्था में पहुँचने पर अपनी रुचि के अनुसार जीवन संगी चुनने का अधिकार होना उचित है—यद्यपि माता-पिता से परामर्श करना भी इस सम्बन्ध में आवश्यक है। कुछ वर्षों से शारदा एक्ट द्वारा जो आयु के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध लगाए गये हैं—वे उचित ही हैं।

पारिवारिक-स्वातंत्र्य

प्रत्येक नागरिक का, चाहे वह धनी हो या निर्धन, अधिकार है कि राष्ट्र का प्रत्येक पद, उसकी योग्यता के अनुसार उसे प्राप्त हो सके, इस सम्बन्ध में धर्म, जाति, वर्ण वा सामाजिक स्थिति का विवेक न होना चाहिये। योग्यता केवल कसौटी होनी चाहिए।

पदाधिकार

प्रत्येक नागरिक अपने देश की शासन सभाओं में सभासद् निर्वाचित होने का तथा उनके निर्वाचन में सम्मति प्रदान करने का अधिकार रखता है। कुछ विशेष अवस्थाओं में ही उसे इस अधिकार से वञ्चित किया जा सकता है।

निर्वाचन-अधिकार

प्रत्येक नागरिक राष्ट्र से अपेक्षा कर सकता है कि वह उसकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध करे। प्रायः सभी उन्नत देशों में बाधित प्रारम्भिक शिक्षा देना राष्ट्र का परम कर्त्तव्य माना जाता है अतएव इंग्लैंड, अमेरिका, जापान आदि राष्ट्रों में सौ प्रतिशत शिक्षित जनता देखी जाती है। भारतवर्ष में इस अधिकार को समझने और पहचानने की अत्यन्त आवश्यकता है।

शिक्षा-अधिकार

राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को निर्वाह प्राप्त करने का अधिकार है। जीविका का प्रबन्ध करना न केवल व्यक्ति का अपना कर्त्तव्य है, परन्तु राष्ट्र का भी कर्त्तव्य है। इंगलैंड आदि सभ्य देशों में प्रत्येक व्यक्ति को जीविका न रहने पर निर्वाह के लिए अपेक्षित सहायता दी जाती है। विशेषतया वृद्धावस्था में जब काम करने की सामर्थ्य जाती रहती है, सरकार द्वारा नागरिकों की सहायता की जाती है।

निर्वाह प्राप्ति का अधिकार

२. नागरिकों के कर्त्तव्य

अधिकारों से अधिक आवश्यक कर्त्तव्य हैं। प्रत्येक नागरिक को अधिकार की अपेक्षा करने से पूर्व अपने कर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

निम्नलिखित कुछ नागरिक-कर्त्तव्य हैं, जिनका ज्ञान होना

प्रत्येक नागरिक के लिए अत्यन्त आवश्यक है:-

स्वदेश-भक्ति

प्रत्येक नागरिक का परम-कर्त्तव्य है कि वह अपने देश के प्रति अगाध प्रेम तथा अनन्य भक्ति के भाव रखे। अपने राष्ट्र के लिये किसी भी त्याग को करने के लिए सदा उद्यत रहे। यदि स्वदेश-रक्षा के लिए जीवन भी देना पड़े तो जीवन आहुति देने में संकोच न करे।

न केवल युद्ध के समय में ही सेना में भरती होना तथा स्वदेशरक्षा के लिए अपना जीवन बलिदान कर देना पर्याप्त है, अपितु किसी अन्य आन्तरिक अशान्ति के समय में देश की सहायता करना भी अत्यन्त आवश्यक है। जब कभी राष्ट्र की दो जातियों में वैमनस्य के कारण झगड़ा-फसाद खड़ा हो जाय, उस समय शान्ति स्थापित करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। ऐसे समय पुलिस को प्रत्येक सहायता पहुँचाना प्रत्येक नागरिक का धर्म है। इन्हीं आचरणों से सच्ची स्वदेश-भक्ति का प्रकाश हो सकता है।

कानूनों का पालन

प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्र के कानूनों का पालन करे। इन कानूनों की अवज्ञा करना राष्ट्र से विद्रोह करना है। विशेषतया जन-तन्त्र राष्ट्रों में जहां नागरिकों से निर्वाचित व्यक्ति ही नियमों का निर्माण करते हैं, नियमों का भंग करना सर्वथा हास्यास्पद एवं विरोधात्मक है। यह ठीक है कि नियम-निर्माण में त्रुटियां हो सकती हैं, क्योंकि नियम बनाने वाले देवता नहीं होते, फिर भी नियमों का भंग करना अक्षम्य है। नियमों में परिवर्तन कराने के लिए अन्य वैध उपायों का अवलम्बन किया जा सकता है। प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र में नियमों की अवज्ञा

करना बहुत बड़ा अपराध समझा जाता है, और उसके लिये उचित दण्ड दिया जाता है। केवल असाधारण अवस्थाओं में ही ऐसी अवज्ञा को क्षम्य समझा जाता है।

कर-प्रदान

कोई शासन-व्यवस्था नहीं चल सकती, जब तक उसके चलाने के लिये कोष विद्यमान न हो। वास्तव में सेना और कोष ही किसी राष्ट्र के आधारभूत स्तम्भ हैं। अतः जहां प्रत्येक नागरिक को सेना में भरती होकर राष्ट्र सेवा के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये, वहां धन द्वारा भी उसे पूरी सहायता करनी चाहिए। अतः किसी अवस्था में कर देने से इन्कार करना बड़ा भारी अपराध है। आज कल कर देना एक अरुचिकर कर्त्तव्य समझा जाता है। परन्तु वास्तव में प्रत्येक देश-निवासी को इच्छा पूर्वक, अपने राष्ट्र की हित-कामना की भावना से, जितनी सम्भव हो, उतनी सहायता करनी चाहिए।

पद-स्वीकृति

राष्ट्र का अधिकार है कि किसी व्यक्ति को किसी समय किसी पद पर वैतनिक या अवैतनिक सेवा करने के लिये नियुक्त कर सके। प्रत्येक नागरिक को ऐसी सेवा करने के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये। यदि सेना में भरती होकर देश-रक्षा करने की आवश्यकता हो, तो उस काम करने के लिए भी संकोच नहीं करना चाहिए। नगर-समिति-यों, ज़िला बोर्डों आदि में भी अवैतनिक सेवा करने के लिये नियुक्त किया जाए, तब भी बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक सब काम करना चाहिए।

मत-प्रदान

निर्वाचन के समय अपना वोट या सम्मति देना भी प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति इस कर्त्तव्य का पालन नहीं करता, वह नागरिकता के मर्म को नहीं समझता।

अमरीका में किसी नागरिकता से ऐसे व्यक्ति को वंचित किया जा सकता है, जो कई बार वोट देने के कर्त्तव्य का पालन नहीं करता।

शिक्षा-ग्रहण

प्रत्येक माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी संतान को शिक्षित करें। यह केवल राष्ट्र का ही कर्त्तव्य नहीं कि वह अपने नागरिकों को शिक्षा दे, नागरिकों का अपना कर्तव्य भी है कि स्थान-स्थान पर संस्थायें खोल कर देश के प्रत्येक बालक वा बालिका को कम-से-कम प्रारम्भिक शिक्षा से शिक्षित करें। नागरिकों को इस कर्तव्य के पालन न करने पर दण्ड भी दिया जा सकता है।

निर्वाह-सम्पादन

प्रत्येक नागरिक को किसी-न-किसी निर्वाह कार्य में लग जाना आवश्यक है, अन्यथा वह समाज पर बोझ के समान होगा। भारतवर्ष में ऐसे व्यक्तियों की की संख्या कम नहीं जो हृष्ट-पुष्ट होते हुए कार्य करने की क्षमता रखते हुए भी कोई कार्य न करके भिक्षावृत्ति से ही निर्वाह करते हैं। उन कुछ सच्चे विरक्त साधु संन्यासियों को छोड़कर, जो वास्तव में आध्यात्मिक शांति की तृष्णा के लिए सांसारिक बन्धनों का त्याग कर चुके हैं, अन्य सब भिक्षुक लोग समाज पर भार के समान हैं।

परस्पर-सहानुभूति

जातीय संकट की अवस्था में विशेषतया तथा साधारणतया भी परस्पर-सहानुभूति प्रकट करना तथा सहायता करना प्रत्येक नागरिक का परमधर्म है। जो नागरिक ऐसी विषम अवस्थाओं का लाभ उठाकर स्वजातीयों के साथ सहायता की बजाय कठोरता एवं क्रूरता के व्यवहार करते हैं, वे देशद्रोही हैं। भारतवर्ष के स्वतन्त्र हो जाने

पर पंजाब के पीड़ित शरणार्थियों के साथ ऐसा अमानुषिक व्यवहार किया गया। कई नागरिकों ने उनसे पगड़ी लेकर अत्यधिक किरायों पर मकान दिये। अन्न एवं वस्त्र के व्यापारियों ने कीमतें बढ़ाकर खून चूसना प्रारम्भ किया। यह सब नागरिक धर्म के विरुद्ध है। शरणार्थियों की सहायता करके उनके दुःख को हलका करना प्रत्येक सच्चे नागरिक का परम कर्त्तव्य है। देश की उन्नति जातीय चरित्र के उन्नत होने पर ही सम्भव है।

५. आदर्श नागरिक

आदर्श नागरिक कौन है? आदर्श नागरिक वह है जो अपने देश के लिये तन, मन, धन देने के लिये सर्वदा उद्यत रहे। जो व्यक्ति स्वदेश के लिये सर्वस्व अर्पण नहीं कर सकता, वह आदर्श नागरिक नहीं कहा जा सकता। साधारणतया अच्छा नागरिक बनने के लिये निम्न तीन योग्यताओं की आवश्यकता है:—

(क) एक अच्छे नागरिक को अपने वैयक्तिक हितों की अपेक्षा सामाजिक हित का अधिक चिन्तन करना चाहिए। एक स्वार्थी व्यक्ति नागरिक-धर्म का पालन नहीं कर सकता। उसका जीवन तो पशु-पक्षियों की तरह स्वार्थमयता का जीवन है और मनुष्यत्व के उदात्त तत्त्वों से शून्य है। एक नीतिकार के कथनानुसार उसी व्यक्ति का जीवन सफल है, जिसके जीने में बहुत व्यक्तियों का उपकार हो। वैसे तो कौवा भी अपना पेट भर कर जीवन बिता देता है।

(ख) एक अच्छा नागरिक स्वयं शिक्षित बनता है और अन्य अशिक्षित नागरिकों को शिक्षित करना अपना कर्तव्य समझता है। वास्तव में शिक्षा नागरिकता की प्रथम सीढ़ी है। इसके बिना

कोई व्यक्ति अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों को समझ ही नहीं सकता। अतः प्रत्येक अच्छे नागरिक को शिक्षित होने का प्रयत्न करना चाहिए और अपने देश में से अविद्या दूर कराने के लिए भरसक कोशिश करनी चाहिए।

(ग) एक अच्छा नागरिक आलस्य-रोग से अपने को अछूता रखता है, एवं कार्यव्यग्रता में ही अपने जीवन की सफलता समझता है। आजकल बड़े-बड़े राष्ट्रों में रहने वाले नागरिक प्रायः अकर्मण्यता का शिकार बनकर अपने नागरिक धर्म को भूल जाते हैं और राष्ट्र के प्रति स्वकर्त्तव्यों का पालन नहीं करते। प्राचीन नगर-राष्ट्रों में कोई व्यक्ति क्रिया-हीन न रह सकता था। अपितु प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र-शासन में सक्रिय भाग लेना पड़ता था अब भी शिक्षित समाज में प्रत्येक व्यक्ति समाजिक हित के लिये कार्य करना तथा समाज पर बोझ बनना अपना कर्त्तव्य अनुभव करता है। परन्तु भारतवर्ष में नागरिकता की यह भावना अभी तक यहां के निवासियों में हृदयङ्गम नहीं हो सकी है। अच्छा नागरिक बनने की यह योग्यता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

२

राष्ट्र की उत्पत्ति और विकास

१. राष्ट्र का विकास

जिस राष्ट्र के हम सब अंग हैं, जिसके प्रति हमारे नागरिकता के कुछ कर्त्तव्य हैं, जिसके हित में हमारा अपना हित है, उस राष्ट्र के सम्बन्ध में हमें अधिक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। विशेषतया राष्ट्र की उत्पति तथा विकास का किञ्चित् परिचय प्राप्त करना इसलिये आवश्यक है कि हम वर्तमान राष्ट्र में व्यक्ति के स्थान को

निश्चित कर सकें तथा तदनुसार उसकी मर्यादाओं को भी निश्चित कर सकें। आज एक भारतीय न केवल अपने ग्राम, नगर, प्रांत तथा देश का नागरिक है अपितु वह कुछ राजनैतिक परिस्थितियों के कारण ब्रिटिश साम्राज्य का भी नागरिक है। इतना ही नहीं, वह संसार का भी एक नागरिक है, यद्यपि इस नागरिकता के बंधन अभी शिथिल-प्राय हैं। इस समस्त चक्र को समझने के लिये ऐतिहासिक दृष्टि से राष्ट्र की उत्पत्ति तथा विकास पर दृष्टिक्षेप करना आवश्यक है।

२. मनुष्य

मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रह सकता। यद्यपि उसमें स्वार्थ प्रवृत्ति भी कूट-कूट कर भरी हुई है, तथापि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे पराश्रित रहना ही पड़ता है। जितना वह बड़ा होता है, उतनी ही उसकी पराश्रितता बढ़ती जाती है। इसी पराश्रितता के कारण वह विवाह करता है, सन्तान उत्पन्न करता है, घर बसाता है तथा अन्य सम्बन्धों को स्थापित करता है।

जो भारतवर्ष में जातीय जीवन का एक महान् घटक तत्त्व है, इसी प्रधानता पर आश्रित है। पिता के जीवित रहते हुए सब पुत्रों को एक ही घर में रहना होता है। और एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करना होता है—चाहे उनकी आय के भिन्न-भिन्न स्रोत हों। इस प्रथा द्वारा पारिवारिक घनिष्टता में बहुत सहायता प्राप्त होती है।

४. समुदाय

ऐसे ही कुछ परिवारों द्वारा समुदाय का विकास होता है। रक्त सम्बन्ध की समानता तथा धर्म की समानता के कारण कुछ परिवार मिलकर एक स्थान पर रहना पसन्द करते हैं। तब ग्राम बसने प्रारम्भ होते हैं। कृषि-व्यवसाय भी प्रारम्भ होता है और एकत्रित समुदाय के व्यक्ति, हितों की एक सूत्रता में बंधने प्रारम्भ होते हैं। ये मिलकर न केवल खेती आदि व्यवसाय करते हैं, अपितु अपने ग्राम का प्रबन्ध भी मिलकर करते हैं। विशेषतया अन्य बाह्य आक्रान्ताओं से अपने ग्राम की रक्षा करना भी अपना कर्तव्य समझते हैं। इसी स्वरक्षा सम्बन्धी जागृति के साथ समुदायों में राष्ट्र-सत्ता का बीज अंकुरित होता है।

प्राचीन भारत में ऐसे समुदाय अथवा गण, स्थान-स्थान पर विद्यमान थे, जो अपने आचार तथा व्यवहार में सर्वथा स्वतन्त्र थे। उन समुदायों अथवा गणों में राजा की नियुक्ति होती थी; जो वास्तव में कुलपति के समान समुदाय का अधिपति होता था।

५. नगर-राष्ट्र

समुदायों के बाद ही नगर-राष्ट्र की उत्पत्ति हुई। उपरिवर्णित समुदायों में राजनैतिक जागृति के उत्पन्न होने के साथ राजनैतिक उद्देश्यों से उन समुदायों में अधिक घनिष्टता उत्पन्न हो गई। ऐसे

कई समुदायों के संगठित होने के बाद नगर-राष्ट्रों का प्रारम्भ हुआ। प्राचीन यूनान में एथेन्स तथा स्पार्टा ऐसे ही नगर-राष्ट्र थे। इनमें प्रत्येक नागरिक अपने नगर को ही राष्ट्र समझता था और उसी के लिये सर्वस्व त्याग करने को सर्वदा उद्यत रहता था। बड़े-बड़े विकसित जातीय राष्ट्रों का अभी उदय न हुआ था। नागरिक लोग शत्रु का सामना करने के लिए संगठित होकर सेना का रूप धारण कर लेते थे और युद्ध में यथाशक्ति उसे पराजित करने की चेष्टा करते थे। ऐसे नगर-राष्ट्र स्थान-स्थान पर होने के कारण सीमाप्रान्तों पर अनेक युद्ध निरन्तर होते रहते थे और अन्तर्जातीय शांति का प्रश्न भी तब उत्पन्न न हुआ था।

ही राष्ट्र के लिये मरने और मारने को हमेशा उद्यत है। यही जातीय संकीर्णता वर्तमान युद्धों का मूल कारण है। जब तक यह संकीर्णता मनुष्य समाज से नहीं निकल जाती, तब तक अन्तर्जातीय शान्ति-स्थापना की कोई सम्भावना नहीं।

७. अन्तर्जातीय-राष्ट्र

अन्तर्जातीय शान्ति संसार में तभी स्थापित हो सकती है, जब एक अन्तर्जातीय राष्ट्र की स्थापना हो। अब तक ऐसा विश्व-व्यापी राष्ट्र राजनीतिज्ञों की कल्पना में ही रहा है। परन्तु यह कल्पना नितान्त असम्भव नहीं। जिस तरह निरन्तर युद्धों से परिश्रान्त होकर नगर-राष्ट्रों ने जातीय राष्ट्रों की रचना की, उसी तरह वर्तमान जातीयराष्ट्र भी, सतत अन्तर्जातीय संघर्षों से परिश्रान्त होकर, विश्वराष्ट्र की रचना कर डालें, ऐसा विचार सम्भवनीयता के क्षेत्र से बाहर नहीं। यह सर्वथा सम्भव है कि निकट भविष्य में ही एक संसार-व्यापी राष्ट्र की स्थापना हो जाय, जिसमें इंग्लैंड, अमेरिका, रूस आदि भिन्न-भिन्न राष्ट्र अमेरिका के प्रान्तों की तरह अपनी पृथक् सत्ता का परित्याग करके संसार के व्यापी हित के लिए विश्वराष्ट्र की सत्ता में अपने को अन्तर्लीन कर दें। ऐसी अवस्था में प्रत्येक राष्ट्र अपनी सीमा में, आन्तरिक शासन में स्वतन्त्र होता हुआ भी विश्व-शासन में परतन्त्र होगा। ऐसी अवस्था में संसार का कितना कल्याण होगा इसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। आजकल के पाशविक अन्तर्जातीय कलह समाप्त हो जायंगे। उनमें नष्ट होने वाले असंख्य प्राणियों की रक्षा होगी। इसके अतिरिक्त करोड़ों और अरबों रुपयों की सम्पत्ति जो युद्ध में प्रतिदिन स्वाहा होती है, बच सकेगी और उसका उपयोग विश्वराष्ट्र के कल्याण के सम्पादन में किया जायेगा।

प्रथम महायुद्ध (१६१४-१८) के बाद ऐसे ही विश्वराष्ट्र की कल्पना राष्ट्र-संघ (League of Nations) के रूप में प्रकट हुई थी। इसमे संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों ने सम्मिलित हो कर विश्व-शान्ति को स्थापित करने की चेष्टा की । परन्तु यह चेष्टा सफल न हो सकी । इसका कारण है कि प्रत्येक राष्ट्र ने अपनी जातीयता व सत्ता के उग्र रूप को परित्याग करने में संकोच प्रदर्शित किया । किसी ने भी संसार के हित के सामने स्वजातीय हित को झुकाना स्वीकार न किया। प्रत्येक राष्ट्र में संकीर्णता के भाव अधिक दृढ़ होते गये। और परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रसंघ मृतप्राय: होकर संसार के युद्धों को रोकने में सर्वथा अशक्त तथा सामर्थ्यहीन हो गया। परन्तु हमें आशा करनी चाहिए कि विश्वराष्ट्र की स्थापना अवश्य होगी और विश्व-शान्ति का स्वप्न केवल स्वप्न न रह कर एक सचाई के रूप में परिणत होगा। तब हम किसी विशेष राष्ट्र के नागरिक न रह कर सच्चे अर्थों में संसार के नागरिक होने का अभिमान कर सकेंगे। वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ (U. N. O.) सम्भवतः इस स्वप्न को क्रियात्मक बना सके।

८. जाति, राष्ट्र शासन-प्रणाली की व्याख्या

जाति (Nation)

'जाति' का शब्द किसी देश में निवास करने वाले उन व्यक्तियों के लिये प्रयोग किया जाता है जिनमें धर्म, भाषा, जन्म, प्रथा एवं इतिहास—इन पाँच तत्त्वों की एकता पाई जाय। जिस जिन-समुदाय में समानता के ये बन्धन दृढ़ता से देखे जायें उसे एक जाति कहा जाता है। वे समान चेष्टा और उद्योग से जातीय वैभव के लिये

प्रयत्न करते हैं। वे अपनी मातृभूमि के लिए प्रत्येक त्याग करने को सर्वदा उद्यत रहते हैं।

राष्ट्र (State)

प्रत्येक जाति अपनी आवश्यकताओं के अनुसार एक राजनैतिक संगठन का निर्माण करती है। यही राजनैतिक संगठन राष्ट्र कहलाता है। प्रायः प्रत्येक जाति अपना स्वतन्त्र स्वराष्ट्र निर्मित करना अपना अधिकार समझती है।

शासन-प्रणाली या सरकार (Government.)

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी-अपनी शासन प्रणाली होती है। किसी राष्ट्र की एक-सत्तात्मक, किसी की जनतन्त्र-शासन-प्रणाली इत्यादि। यह प्रायः अपनी-अपनी अवस्थाओं के अनुसार होता है। सरकार तो राष्ट्र की एक मशीन है-- एक साधन मात्र है, जिसके द्वारा राष्ट्र अपने कार्य सम्पन्न करने में समर्थ हो सकता है। राष्ट्र एक स्थायी संस्था है, परन्तु सरकार परिवर्तनशील संस्था है। इंग्लैंड में भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों की प्रधानता के कारण सरकार में परिवर्तन होता रहता है, परन्तु इंग्लैंड-राष्ट्र सर्वथा स्थायी तत्त्व है जिसमें बहुत कम परिवर्तन हो सकते हैं।

इस व्याख्या से स्पष्ट है कि जाति जनता का नाम है, राष्ट्र उस जनता के राजनैतिक (सामाजिक नहीं) संगठन का नाम है, शासन-प्रणाली उस राष्ट्र के शासन-प्रकार का नाम है। कभी-कभी एक राष्ट्र में एक से अधिक जातियां निवास कर सकती हैं। कैनाडा में फ्रैंच तथा अंग्रेज़ जातियां रहती हैं, परन्तु दोनों जातियों का राष्ट्र एक है। अमेरीका में भिन्न-भिन्न जातियों ने निवास किया तथा एक राष्ट्र की रचना कर ली। आज वे जातियां

एक भाषा, एक इतिहास आदि बन्धनों में ग्रथित होकर एक अमेरीकन जाति बन चुकी है। भारतवर्ष में भी हिन्दू, मुसलमान ईसाई, पारसी आदि निवासी एक जातीयता में क्रमशः परिणत हो चुके हैं और एक राष्ट्र का निर्माण कर चुके हैं।

जैसे अभी बतलाया जा चुका है शासन-प्रणाली भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती है। पिछली कुछ शताब्दियों में प्राच्य तथा पाश्चात्य देशों में मुख्यतया निम्न तीन प्रकार की शासन-प्रणालियों का प्रचार रहा है। वर्तमान जगत् में बड़ी तेजी से राजनैतिक विचारों तथा व्याख्याओं में परिवर्तन हो रहे हैं। कल जो विचार संसार पर राज्य कर रहे थे, आज उनको मध्यकालीन कह कर छोड़ा जा रहा है, परन्तु उन्हीं छोड़े हुए विचारों को दूसरे रूप में पुनः स्वीकार किया जा रहा है। तो भी साधारण ज्ञान के लिए निम्नलिखित प्रचलित शासन-पद्धतियों का ध्यान रखना चाहिए:—

१. एकसत्तात्मक शासन-प्रणाली (Autocracy)

एक विशेष व्यक्ति का समस्त जाति व राष्ट्र का प्रभुत्व होता है। इसी का वचन उस देश का कानून होता है। वह जैसा चाहता है, कर सकता है। फ्रांस में लुई, रूस में ज़ार, इंग्लैंड में स्टुअर्ट्स, भारतवर्ष में मुगल बादशाह लोग ऐसे ही एकसत्तात्मक राष्ट्रों के अधिपति रहे।

इस शासन-प्रणाली में स्पष्टतया ऐसे दोष विद्यमान थे, जिन्हें सभ्यता के विकास के साथ सहन नहीं किया जा सकता था। सारी प्रजा से पशुवत् व्यवहार करना मनुष्यता का तिरस्कार करना था। समस्त जनता को मूक रखकर शासन-प्रबन्ध में उनकी सम्मति न लेकर किसी एक व्यक्ति की मनमानी करना सचमुच

भारी हिमायत थी। अतः फ्रांस, रूस आदि देशों में एकसत्ता के विरुद्ध विप्लव हुए और ऐसी सत्ता को उन देशों में समाप्त कर दिया गया। इंग्लैंड में क्रमशः स्वतन्त्रता के विकास के साथ बिना रक्तपात के एकसत्ता शासन-प्रणाली का स्थान जनतन्त्र-प्रणाली ने ग्रहण किया। भारतवर्ष में भी मुगल साम्राज्य के ह्रास के बाद तथा ब्रिटिश राज्य की स्थापना के साथ इसी शासन-प्रणाली को स्थापित किया गया है, जो अब स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद पूर्णतया विकसित हो रही है।

२. कुलीन-तन्त्र शासन-प्रणाली (Aristocracy)

प्राचीन यूनान तथा रोम में इस प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। एकसत्ता की समाप्ति के बाद समाज के विशिष्ट व्यक्तियों के हाथ में देश का शासन-भार रखा गया। कई बार तो समस्त नगरराष्ट्र को भी शासन करने का कर्त्तव्य सौंप दिया गया—परन्तु प्रायः प्रतिष्ठित नागरिकों को, जो शासन कार्य की क्षमता रखते थे, शासक (Consul) नियत किया जाता, जो संख्या में एक से अधिक होते थे।

परन्तु इस शासन-व्यवस्था में भी क्रमशः दोष उत्पन्न हो गए, क्योंकि धनसम्पन्न व्यक्तियों ने इन पदों को प्राप्त करने की पूरी चेष्टा की और धन की सहायता से अपने उद्देश्य में वे सफल हुए। इस तरह शासन का प्रबन्ध कुलीन व्यक्तियों के हाथ से निकल कर धनी शक्तिमान् व्यक्तियों के हाथ में चला गया, जो फिर एक-सत्ता की तरह अपनी मनमानी करने लगे और जनता के हितों को पदाक्रान्त करके अपनी घृणित स्वार्थलिप्साओं को पूरा करने लगे। अतः जनता में इस शासन प्रणाली के प्रति भी रोष तथा असन्तोष उत्पन्न उत्पन्न हुआ और ऐसी शासन पद्धति

अनुराग रखती हुई अपने राष्ट्र अमेरिका के प्रति भी अनन्य भक्ति के भाव प्रकाशित करती है और उसके लिये पूर्ण त्याग करने के लिये सदा समुद्यत है।

भारतवर्ष भी अमेरिका की तरह एक महान् देश है। इसकी आबादी अमेरिका से दुगनी है। इस देश का विस्तार भी कम नहीं है। यहां कितनी ही जातियां निवास करती है, कितने ही धर्म है, कितनी ही भाषाएं हैं। इन सबके स्वतन्त्र विकास के लिए आवश्यक है कि इन्हें यथासम्भव अधिक स्वतन्त्रता दी जाए और अत्यावश्यक विषयों में ही बाहर से हस्तान्तेप किया जाय। मद्रास और पूर्व पंजाब की भारतीयता में समानता होते हुए भी परस्पर संस्कृति, भाषा और प्रथाओं की भिन्नता के कारण स्थानीय शासन में स्वाधीनता का होना आवश्यक है। दोनों प्रान्तों की सामाजिक एवं अर्थिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न है, समस्यायें पृथक्-पृथक् हैं। अतः केन्द्र से स्वाधीन, स्थानीय शासन-व्यवस्था द्वारा, वहाँ अधिक अच्छा प्रबन्ध किया जा सकता है, जो केन्द्र से सीधा शासन करने से नहीं हो सकता। इतने बड़े देश के दूर-दूर फैले हुए ग्रामों का निरीक्षण, उनके सुधार का महान् कार्य किसी केन्द्रीय सरकार से सम्भव नहीं, परन्तु स्थानीय सरकारों से होना सम्भव है। इसलिए भारतवर्ष के लिए भी है संघ-शासन-प्रणाली की ही अधिक उपयोगिता मानी गई है। अमेरिका की तरह यहाँ भी ऐसी केंद्रीय शासन-प्रणाली की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है, जिसमें प्रत्येक प्रांत अपने प्रन्तीय कार्यों में सर्वथा स्वतन्त्र होगा, यद्यपि अखिल देशीय कार्यों में केन्द्र का प्रभुत्व होगा। ऐसी अवस्था में भारतीय जातीयता के निर्माण में सुविधा होगी और प्रान्तीय महत्त्वाकांक्षाओं की भी पूर्ति होगी। इस

विशाल देश के ग्राम भी स्थानीय शासन के कारण अधिक प्रबुद्ध और जागृत होंगे—वहाँ भी राष्ट्रीय उन्नति के साथ सर्वतोमुखी उन्नति का बीजारोपण होगा और वे कभी अन्य सभ्यताभिमानी राष्ट्रों के ग्रामों के सदृश सुख, स्वास्थ्य और के आनन्द के नन्दन-कानन बन सकेंगे। माहात्मा गांधीजी के विचारों के अनुसार ग्राम-पञ्चायतों को पुनर्जीवित करने तथा उन्हें ही शासन की इकाई बनाने से देश का सच्चा कल्याण होगा।

३

ग्राम

१. ग्रामों का महत्व

हमारा भारतवर्ष ग्रामों का देश है। इस देश की ९० प्रतिशत जनता ग्रामों में ही निवास करती है। लगभग पाँच लाख गाँव इस देश में है। नगरों की संख्या बहुत कम है। एक लाख से अधिक आबादी वाले नगर भारतवर्ष मे कुल ४० हैं। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे देश का कितना बड़ा भाग ग्रामों में बसता है और कितना थोड़ा नगरों में। अतः यह स्पष्ट है कि देश का अधिकतम कल्याण इन ग्रामों के ही कल्याण में है।

प्रत्येक भारतीय नागरिक को इसलिए ग्रामों के महत्त्व को हृदयङ्गम करना चाहिए और ग्रामसेवा को अपने जीवन का ध्येय बनाना चाहिए। ग्रामों में रहने वाले निर्धन, अशिक्षित, रोगग्रस्त भारतीय बन्धुओं की उन्नति में देश की वास्तविक उन्नति माननी चाहिए।

२. प्राचीन ग्राम

भारतवर्ष के प्राचीन ग्राम ऐसे न थे, जैसे वे अब हैं। पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से पहले वे सुखी, सम्पन्न तथा सर्वथा सन्तुष्ट थे। प्रत्येक भारतीय ग्राम—प्रसिद्ध ऐतिहासिक एलफिन्स्टन की सम्मति में—अपने में एक छोटा-सा राष्ट्र था। उसकी आवश्यकताएं परिमित थीं और अपने में ही पूरी हो जाती थीं। ग्राम का किसान अन्न की, जुलाहा कपड़े की, कारीगर मकान की एवं तरखान, धोबी, नाई, मोची आदि अन्य सब अपेक्षित वस्तुओं की आवश्यकता पूरी कर देते थे। ग्राम के बाहर वस्तु-विनिमय की ज़रूरत भी न होती। ग्राम के अन्दर भी मुद्रा के प्रयोग के विना पदार्थों के परस्पर विनिमय द्वारा ही सब कार्य सम्पन्न हो जाता था। मोची जूता देकर किसान से अनाज लेता और किसान अनाज देकर जुलाहे से कपड़ा लेता था। इस तरह विना किन्हीं वर्तमान पेचीदगीओं के, भारतीय ग्रामवासी अपने आर्थिक जीवन को सरलता से व्यतीत करता था। तब भूख न थी। नंग न थी। सब कोई सम्पन्न था और आधुनिक जीवन-संघर्ष से सर्वथा मुक्त था।

इस आर्थिक स्वतन्त्रता के अतिरिक्त प्राचीन ग्रामों में पूर्ण राजनैतिक स्वतन्त्रता भी थी। प्रत्येक ग्राम में ग्राम-सभा वा समिति होती, उसमें वृद्ध लोग बैठते और ग्राम का सब प्रबन्ध करते। कार्य संचालन करने के लिए ग्रामणी वा ग्रामाधिपति होता, जो ग्रामवृद्धों की आज्ञानुसार ग्राम का शासन करता था। वास्तव में ये सब ग्राम स्वतन्त्र राष्ट्र थे। इनके शासन में किसी बाहर के व्यक्ति का हस्तक्षेप न होता। ग्राम-सभाओं को नियम बनाने, नियमों का पालन करने, नियमभंग की अवस्था में दण्ड

का निश्चय करने तथा दण्ड देने की पूर्ण शक्ति थी। ग्रामों के लोग इन सभाओं की आज्ञाओं को मानते थे, परस्पर विवाद में इनके निर्णय का आदर करते और दण्ड भी सहर्ष स्वीकार करते थे। वास्तव में यह स्वराज्य की चरम सीमा थी और इसी कारण प्राचीन ग्रामों में समृद्धि, सन्तोष एवं सुख का सर्वत्र राज्य था।

परन्तु पाश्चात्य देशों में भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण जो प्रबल औद्योगिक क्रान्ति (Industorial Revolution) हुई, उसने भारतीय ग्रामों को भी अछूता न छोड़ा। स्टीम एञ्जिन, जहाज, रेल, सड़कें आदि बन जाने के कारण एक देश का माल दूरस्थ देशों में पहुँचने लगा। भारतीय ग्रामों में भी वह पहुँचा। मान्चेस्टर, लंकाशायर के कपड़ों के सामने गाँव के जुलाहे के कपड़े बहुत घटिया और रद्दी प्रतीत होने लगे। खद्दर कम बिकने लगा। जुलाहों का व्यवसाय जाता रहा। इसी तरह जगह-जगह अनाज पहुँच जाने के कारण किसान के कृषि-कार्य को तीव्र आघात पहुँचा। खांड व चीनी आ जाने के बाद गुड़ खाने वाले कम हो गए और गांव के कोल्हू भी क्रमशः बन्द होते गए। अभिप्राय यह कि ग्रामों के जीवन में तूफान-सा उठ खड़ा हुआ और पहले की आत्म-निर्भरता तथा आत्म सन्तुष्टता जाती रही।

२. वर्तमान ग्राम

परिणाम स्वरूप भारतवर्ष के ग्रामों में प्रबल परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। बड़ी शीघ्रता से विनिमय ने आत्मसन्तुष्टता का स्थान ले लिया। मुद्रा का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। ग्राम-व्यवसायों का नाश होने लगा। बेकारी बढ़ने लगी। किसान लोग भूखे

३. बन्दोबस्त के कर्मचारियों की ज़मीन नापने, लगान नियत करने इत्यादि में सहायता करना।
४. गांव में जन्म और मृत्यु का रजिस्टर रखना और जिले में उनकी सूचना भेजना।
५. सरकार को युद्ध के समय खाद्यसामग्री आदि से सहायता करना।

नम्बरदार का वेतन अत्यल्प होता है। परन्तु उसे एकत्रित कराए गए भूमि-कर का ५ प्रतिशत भाग मिलता है। वैसे गांव मे उसकी प्रतिष्ठा होती है। कोई गांव का काम उसके परामर्श के बिना नहीं होता। विवाह आदि सामाजिक अवसरों पर उसका विशेष आदर तथा सम्मान होता है। लोग उससे भय भी करते हैं क्योंकि यह ज़िला अफसरों तक पहुंचने वाला होता है और किसी को हानि या लाभ पहुँचा सकता है पंजाब सरकार गांवों पर इन्हीं के द्वारा शासन करती है और इन्हीं के द्वारा प्रांतीय आय का बड़ा भाग संग्रह करती है।

चौकीदार

गांव का दूसरा कर्मचारी चौकीदार है। ये भी आवश्यकतानुसार किसी गाँव में एक या अधिक होते हैं। इनकी नियुक्ति नम्बरदार करता है। कई चौकीदारों पर एक दफ़ादार होता है। प्रायः चौकीदार नीला कोट और नीली पगड़ी पहनता है। उनके पास तलवार बन्दूक होती है। ये सब सामान उसे गांव के धन से दिया जाता है। चौकीदार का कर्त्तव्य चोर, डाकुओं से गांव की रक्षा करना होता है। पुलिस को तत्काल सूचना भेजना और गांव वालों को खतरे की खबर देना उसका काम है। गांव के बदमाशों की सूची रखना तथा नम्बरदार को उन्हें नियन्त्रण में रखने में सहायता देना

चौकीदार के लिए आवश्यक होता है।

भारतवर्ष के गांवों में पटवारी का बहुत महत्व है। कई प्रान्तों में इसे कुलकर्णी कहते हैं। शताब्दियों से इस कर्मचारी द्वारा सरकार का भूमि-कर प्रबन्ध चला आ रहा है। ज़िला-अफ़सर पटवारी को नियुक्त करते हैं। इसे २०) रु० मासिक वेतन प्रांतीय सरकार से प्राप्त होता है।

पटवारी

इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं:—

१. गांव की ज़मीनों के नक्शे बनाना और किलाबंदी आदि का रिकार्ड रखना।
२. बन्दोवस्त अफसरों को भूमि-कर निश्चित करने में सहायता देना।
३. भूमि-कर वसूल कराने में सहायता करना।
४. गांव के अन्य हिसाब रखना।
५. गांव में कहत, बीमारी फ़सलों की तबाही आदि का रिकार्ड रखना और भूमि-कर निर्णय के समय उनकी सूचना देना।
६. पंचायत, ज़िला बोर्ड, लेजिस्लेटिव एसेम्बली आदि के लिए वोटर (मत देने वाले) लोगों की सूची तैयार करना।
७. सरकार की गाँव की सम्पत्ति को रजिस्टर में दर्ज रखना और उस पर किसी अनुचित दख़ल होने की अवस्था में ज़िला-अफसर को सूचना देना। पंजाब में पटवारियों के ऊपर कानूनगो होते हैं जो उनका समय-समय पर निरीक्षण करते हैं।

उपर्युक्त तीन कर्मचारियों के अतिरिक्त एक अन्य कर्मचारी ज़ैलदार होता है। इसे कई प्रान्तों में देश-मुख कहा जाता है इसका मुख्य कर्त्तव्य ग्राम-कर्मचारियों पर निरीक्षण रखना होता है। चालीस-पचास गाँवों पर एक ज़ैलदार होता है। इसकी नियुक्ति भी ज़िला अफ़सर द्वारा की जाती है। इसे अपने अधीन सब गाँवों के भूमिकर का एक प्रतिशत वेतन के रूप में मिलता है।

ज़ैलदार

५. ग्राम-सुधार

भारतवर्ष की मुख्य समस्या ग्राम-सुधार है। ग्राम-सुधार से ही देश का कल्याण है। ग्रामों की समृद्धि में देश की समृद्धि है, ग्रामों की उन्नति में देश की उन्नति है। भारतीय ग्रामों में निम्नलिखित तीन बुराइयों को दूर करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है—

गाँवों की सब से बड़ी बीमारी निर्धनता है। उसका, निवारण अत्यावश्यक है। इसके पूरा हो जाने के साथ अन्य सब रोगों का निवारण सरलता से हो सकता है। गाँवों की निर्धनता को मिटाने के लिये निम्न साधन अत्यन्त आवश्यक हैं :—

निर्धनता

(१) गाँवों के कृषि-व्यवसाय को उन्नत किया जाय। ज़मीनों में खाद, अच्छा बीज देने का प्रबन्ध किया जाय। सिंचाई के लिये नहरों को खुदवाया जाय। अच्छे बैल, व अन्य पशुओं की उत्पत्ति कराई जाए। किसानों की तक़ावी आदि से सहायता की जाए। पैदावार को बेचने के लिये मंडी की सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाय। दुर्भिक्ष आदि के समय लगान माफ़ कर दिया जाए अथवा

बहुत कम कर दिया जाय। ज़मीन को भिन्न टुकड़ों में कट जाने से रोका जाए और जहाँ तक सम्भव हो किसानों को एकत्रित रूप में कृषि करने के लिये उत्साहित किया जाय। अमेरिका आदि उन्नत देशों के वैज्ञानिक कृषिप्रकार भारतवर्ष में आरम्भ किये जाएँ और किसानों के लड़कों को कृषि-शिक्षा के लिये सरकार द्वारा बाहर के देशों में भेजा जाए। इन सब उपायों से गाँवों में कृषि व्यवसाय की उन्नति हो सकती है और निर्धनता का भूत वहाँ से भाग सकता है।

(२) गाँवों में गृह-व्यवसाय को उन्नत किया जाए। किसान बीज बोने के बाद फ़सल काटने तक लगभग पाँच मास के लिये बेकार रहते हैं। बेकारी की अपेक्षा इन दिनों थोड़ा बहुत कमाना और अपनी आय को बढ़ाना गाँवों की निर्धनता को दूर कर सकता है। खद्दर बुनना, रस्सी बनाना, टोकरियां बनाना, गुड़ तैयार करना, बर्तन बनाना आदि कई ऐसे कार्य हैं, जो बिना बहुत पूंजी के घर में बैठे ही किए जा सकते हैं और उनसे गाँवों के किसानों की अल्प आय में कुछ वृद्धि हो सकती है।

(३) गांवों की कर्जदारी को कम किया जाय। भारतीय किसान लगभग ३०० करोड़ रुपये के कर्ज़ से दबे हुए हैं। यह कर्ज उन पर पुश्तों से चला आ रहा है और उसका दूर करना असम्भव-प्राय हो चुका है। सरकार को शीघ्रता से ही ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि ग़रीब आदमी महाजनों के चंगुल में न फंसें और उनसे कर्ज़ा न लें। उनकी जमीनों को भी महाजनों के हाथ में जाने से बचाना चाहिए। गाँव गाँव में सहोद्योग समितियाँ (Co-operative Credit Societies) कायम करके सस्ती दर पर ऋण देने का प्रबन्ध करना चाहिए। इस

आर्थिक सहायता से किसान ऋणमुक्त होंगे. वहां अपनी कृषि तथा गृह-व्यवसायों को उन्नत करने के लिए पूंजी प्राप्त कर सकेंगे। पंजाब सरकार ने किसानों की अक्षमता को दूर करने के लिए कई नये कानून बनाए हैं, जिसके द्वारा महाजनों के हिसाब ठीक रखने पर, ब्याज दर नियत करने पर, ज़मीन गिरवी न रखने आदि पर अच्छे प्रतिबन्ध लगाये गये हैं. इन कानूनों से पंजाब के किसानों की अवस्था अच्छी होती जा रही है, पंजाब के इन कानूनों का अनुकरण अन्य प्रान्तों में भी किया जा रहा है। किसानों की निर्धनता का प्रश्न इसी तरह हल हो सकता है।

अशिक्षितता

गांवों की दूसरी बीमारी अशिक्षितता है। अविद्या के कारण किसान लोग अपने हितों को नहीं समझते। वे अपने कृषि व्यवसाय को उन्नत करने के नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों से सर्वथा अपरिचित हैं और प्रायः सब नवीन बातों को भय तथा अविश्वास से देखते हैं। ऐसी अवस्था में शिक्षा की कितनी आवश्यकता है—यह अच्छी तरह समझा जा सकता है। गवर्नमेंएट को शीघ्र ही गांव-गांव में स्कूल खोलने का प्रबन्ध करना चाहिए और साधारण शिक्षा के साथ कृषि तथा गृह-व्यवसायों का भी थोड़ा ज्ञान प्राइमरी स्कूलों में देना चाहिए। ऐसा करने पर अमेरिका, रूस आदि देशों के किसानों की तरह भारतीय किसान भी विज्ञ होकर अपने हितों का सम्पादन कर सकेगा और देश की सम्पत्ति को बढ़ाने का साधन बन सकेगा।

रोग ग्रस्तता

यह तीसरी बीमारी है। इसका कारण निर्धनता और अशिक्षा दोनों हैं। निर्धन किसान अच्छे मकानों में नहीं रह सकते। अच्छा खाना नहीं खा सकते, अच्छा [illegible] नहीं पहन सकते। वे जल्दी रोगों का शिकार बन जाते हैं।

अशिक्षा के कारण वे सफाई के महत्त्व को नहीं समझते। नागरिक-धर्म से अपरिचित होने के कारण गली, मुहल्ला, तालाब, आदि को सब का समान हितकारी समझ कर उनको गन्दगी से दूर रखना अपना कर्त्तव्य नहीं जानते। ऐसी अवस्था में भारतीय गांव स्वास्थ्य के स्थान पर रोग का घर बन चुके हैं। इसके लिए उन्हें नागरिक-धर्म की शिक्षा देना, स्वास्थ्य विज्ञान का परिचय कराना, रोगनिवारण के साधारण उपायों को बतलाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त गाँव-गाँव में हस्पताल खोलकर रोगों की चिकित्सा का प्रबन्ध भी होना चाहिये। ऐसा होने पर भारतीय-ग्राम सम्पन्न, सुरक्षित तथा स्वस्थ हो सकते हैं।

इन सब ग्राम-सुधारों के लिए अत्यावश्यक है गाँव की प्राचीन संस्था पंचायत को पुनर्जीवित किया जाय। उनके द्वारा जितना सुधार का कार्य किया जा सकता है, उतना गाँव से बाहर न रहने वाले ज़िला-कर्मचारियों द्वारा नहीं किया जा सकता। पंचायतों के स्थापित करने से ग्रामवासियों में नैतिक आत्म-विश्वास का जागरण होगा और वे अपनी सहायता से उपर्युक्त सब बुराइयों को दूर करने में समर्थ हो सकेंगे। गाँवों के शासन में जितना भी कम हस्तक्षेप बाहर से किया जाय, उतनी ही गाँव की भलाई और देश के व्यापक हित की उन्नति होगी। हाँ, धन आदि से हमें उनकी पूरी सहायता अवश्य करनी चाहिए। भारत के नए शासन-विधान में ग्रामों की स्वाधीनता का अधिक ध्यान रखा गया है।

४
नगर समितियाँ और ज़िलाबोर्ड

१. स्थानीय शासन (Local Self-Government)

भारतवर्ष में ब्रिटिश राज्य के स्थापित होने के बाद जनतन्त्र प्रणाली की संस्थाओं को इस देश में क्रमशः प्रवेश करने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। इसके दो कारण थे। प्रथम यह कि जनता को स्वशासन की शिक्षा देने की आवश्यकता थी। दूसरा कारण मितव्ययिता का भी था। केन्द्रीय सरकार से स्थानीय मामलों का इन्तज़ाम करना न केवल दोषपूर्ण रहता अपितु वह मँहगा भी बहुत होता। सन १८७० में सब से प्रथम लार्ड मेयो ने स्थानीय शासन के प्रश्न को ब्रिटिश गवर्नमैन्ट के सम्मुख उपस्थित किया और स्थान-स्थान पर नगर समितियाँ स्थापित करने की सिफ़ारश की। परन्तु इन नगर समितियों के विचार को क्रियात्मक रूप देने का श्रेय लार्ड रिपन को प्राप्त है—जिसके नाम के साथ भारतीय स्थानीय स्वशासन का नाम बहुत सम्बद्ध हो चुका है। १८८३ में कुछ चुने हुए नगरों में ऐसी समितियाँ क़ायम की गईं, जिनमें एक तिहाई से अधिक व्यक्ति सरकारी न होने थे। इन समितियों को अधिक धन व्यय करने के लिए दिया गया। परन्तु किसी प्रकार का कर लगाने का अधिकार अभी उन्हें न दिया गया। इतनी सीमित अवस्थाओं में भी स्थानीय शासन का परीक्षण सफलतापूर्वक प्रारम्भ हो गया।

१९१९ में मांटफ़ोर्ड सुधारों के आने के साथ स्थानीय शासन को अधिक विस्तृत किया गया और म्युनिसिपल कमेटियों को

आगे से अधिक अधिकार तथा कर्त्तव्य सुपुर्द किये गए। कमेटियों में निर्वाचित सदस्यों की बहुसंख्या निश्चित कर दी गई और कमेटी के प्रधान भी निर्वाचित व्यक्ति होने लगे। इसके अतिरिक्त इन कमेटियों को चुंगी आदि कर लगाने तथा उन्हें व्यय करने का पूरा अधिकार दे दिया गया। बड़े-बड़े नगरों में कार्पोरेशन (Corporation) भी क़ायम कर दिये गए, जिनके कर्त्तव्य और अधिकार अधिक विस्तृत कर दिये गए।

२. नगर और समितियों के कर्त्तव्य

नगर समितियों का कर्त्तव्य स्थानीय नगर सम्बन्धी आवश्यकताओं का प्रबन्ध करना है। नगर में शान्ति स्थापित करना इनका कार्य नहीं—वह तो पुलिस का काम है या अन्य ज़िला कर्मचारियों का कर्त्तव्य है। परन्तु निम्नलिखित आवश्यक कार्य इनके सुपुर्द हैं:—

जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना — नगर में सफाई रखने द्वारा, हस्पताल खोलने द्वारा, स्थान-स्थान पर टीका करने के केन्द्र स्थापित करने द्वारा शुद्ध पानी के प्रबन्ध द्वारा, नगर-समितियां नगर के स्वास्थ्य की रक्षा कर सकती हैं।

शिक्षा का प्रबन्ध करना — भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा का भार नगर समितियों व ज़िला बोर्डों पर है। सरकार इन संस्थाओं को शिक्षा-प्रचार के लिए आर्थिक सहायता देती है, परन्तु शिक्षा का प्रबन्ध इन्हीं के हाथ में है। प्राइमरी स्कूल खोलना इन्हीं समितियों का काम है। इसके अतिरिक्त पुस्तकालय, वाचनालय, रात्रि-स्कूल आदि स्थापित करके नागरिकों के साधारण ज्ञान को बढ़ाना कमेटियों का कर्त्तव्य है।

एक एग्जिक्यूटिव आफ़िसर (Executive Officer) नियत किया जाता है। इस कमेटी के सदस्य भी उसे निर्वाचित कर सकते हैं। पंजाब में बहुसंख्या होने पर वह निर्वाचित किया जाता है अन्यथा यह गवर्नमेन्ट द्वारा सीधा नियत किया जाता है। जहां-जहां ऐसे अफ़सर नियत किए गए हैं, वहां नागरिक जीवन की बहुत उन्नति हुई है।

५. कार्पोरेशन (Corporation)

कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, आदि बड़े-बड़े नगरों की समिति का नाम कार्पोरेशन है। इन बड़ी कमेटियों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या बहुत होती है। इनके अधिकार भी बहुत होते हैं। इनके प्रधान को मेयर कहते हैं।

सदस्य ही अपने मेयर तथा डिप्टी मेयर का निर्वाचन करते हैं। चीफ़ एक्सेक्टिव आफ़िसर प्रांतीय सरकार की ओर से नियुक्त किया जाता है। यदि कुल सदस्यों की संख्या उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव (Vote of No-confidence) पास कर दे तो उसको तत्काल अपने पद से मुक्त होना पड़ता है। चीफ एक्सेक्टिव आफिसर कार्पोरेशन का सबसे मुख्याधिकारी होता है। वह ही शहर की सफ़ाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़कों आदि के सुप्रबन्ध के लिये उत्तरदायी होता है। उसकी सहायता के लिए चीफ़ एन्जीनियर, मेडिकल आफ़िसर आफ़ हैल्थ आदि, अन्य अधिकारी होते हैं।

६. नगर की अन्य स्थानीय संस्थाएं

बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े-बड़े नगरों में नगरसुधार-समितियां (Improvement Trusts) भी होती हैं—जिनकी रचना प्रांतीय

सरकार स्वयं करती है। इनका काम नगर-निर्माण की बड़ी-बड़ी योजनाओं को सफल करना है। कुछ लोग इन समितियों में होते हैं, जो इन स्कीमों को पूरा करके उन्हें कार्पोरेशन के सुपुर्द कर देते हैं।

बन्दरगाहों के समीप बम्बई आदि नगरों में पोर्ट ट्रस्ट (Port Trust) होते है, जो बन्दरगाहों के सुधार के लिए विशेष यत्न करते हैं। इनमें सरकार के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त स्थानीय व्यापारी भी सम्मिलित होते हैं, और बन्दरगाहों की सफाई, यात्रियों के आराम, जहाजों पर आने-जाने वाले सामान की सुरक्षा आदि का पूरा प्रबन्ध किया जाता है।

७. ज़िला बोर्ड (District Boards)

नगर के बाहर ज़िलों के क़स्बों, तहसीलों तथा ग्रामों में सफाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़कों के प्रबन्ध करने के लिए जिलाबोर्ड कायम किये जाते हैं। नगर समितियों की तरह इनमें भी प्रायः निर्वाचित सदस्यों की बहुसंख्या होती है। प्रधान भी प्रायः निर्वाचित होते हैं। लार्ड लिटन तथा लार्ड रिपन ने इन ज़िलाबोर्डों को बहुत उत्साहित किया। १९१९ के सुधारों के बाद से इन बोर्डों के अधिकार विस्तृत कर दिये गए हैं और ज़िले के स्थानीय कार्यों का उत्तरदायित्व इन्हीं बोर्डों पर है। प्रत्येक ज़िले में सड़कों के बनवाने और मरम्मत कराने के लिए इञ्जीनियर होते हैं, स्वास्थ्य रक्षा के लिए हैल्थ आफिसर होते हैं, तथा शिक्षा के निरीक्षण के लिए इन्सपेक्टर होते हैं। इन बोर्डों के प्रयत्न से नगरों से बाहर भी शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सुख की वृद्धि होती जा रही है।

इन बोर्डों की आमदनी रोड़-टैक्स, फीस तथा अन्य स्थानीय करों से होती है। भूमि की वार्षिक आय पर एक रुपया लगान

वसूल किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रांतीय सरकार से भी पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलती है। कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर ज़िला बोर्ड के आय-व्यय पर नियन्त्रण रखते हैं और उनके दुरुपयोग होने की अवस्था में ज़िला बोर्ड बंद किया जा सकता है।

८. पंचायत

ग्रामों में स्थानीय शासन के लिए पंचायतों की आवश्यकता पर हम ऊपर लिख आये हैं। आजकल इनके महत्व को समझा जा रहा है। १९०९ में एक रायल कमीशन ने इनको पुनः संगठित करने पर बल दिया था। तदनुसार पंजाब में १९१२ के पचायत कानून द्वारा तहसीलों में पंचायतों की स्थापना की गई। १९२२ में पंचायतें स्थापित करने की सफल योजना क्रिया में परिणत की गई।

इन पंचायतों में चौकीदारी टैक्स देनेवाला प्रत्येक व्यक्ति वोट द्वारा पंच निर्वाचित कर सकता है। इन पंचों के प्रधान को सरपंच कहते हैं। ये पंच संख्या में, पांच-सात होते हैं—और तीन वर्ष तक पंचायत में रहते हैं। प्रत्येक विषय बहुसंख्या से निश्चित किया जाता है। पंचायतों के अधिवेशन आम जनता के सम्मुख किये जाते हैं।

इन पंचायतों के कार्य नगर-समितियों के सदृश होते हैं वे गाँव की सफाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़कों आदि का प्रबन्ध करती हैं। इन कार्यों के अतिरिक्त अदालत का कार्य भी ये पंचायतें करती हैं। निर्णय सबके सामने किया जाता है। पंचायतों को पच्चीस रुपया तक जुर्माना करने का अधिकार है। लड़ाई आदि के फौजदारी मुकदमे भी पंचायत के सामने सुने जाते हैं।

सरकार अपने ज़िला अफसरों द्वारा इन ग्रामपंचायतों पर भी नियन्त्रण रखती हैं। पंचायत-अफसर नियत करके उनकी हर प्रकार से सहायता भी करती है।

५

ज़िला-शासन

१. जिला

भारतीय शासन में जिले का बहुत महत्व है। केन्द्रीय शासन की स्थापना के बाद ज़िला वास्तव में शासन की इकाई है। भारतवर्ष में ६ प्रांत तथा पांच उपप्रांत हैं। इन्हें ज़िलों में विभक्त किया गया है। ब्रिटिश भारतवर्ष के कुल २२४ ज़िले हैं। संयुक्त प्रांत में सबसे अधिक ज़िले हैं–४८ की संख्या में। कई जिले बहुत बड़े हैं, कई छोटे, मद्रास के विजीगापट्टम का जिला आबादी और क्षेत्रफल में डेन्मार्क से भी बड़ा है। पंजाब में कांगड़ा ज़िला पैलस्टाइन देश से भी बड़ा है। बंगाल के मैमनसिंह ज़िले की आबादी ६० लाख से भी अधिक है। कई जिलों के मिलाने से एक कमिश्नरी बनती है। मद्रास को छोड़कर प्रत्येक प्रांत में डिविज़न का विभाग किया हुआ है।

२. ज़िला अधिकारी

प्रत्येक जिले में एक प्रमुख अधिकारी होता है। उसे पंजाब, अवध, सीमाप्रांत और मध्यप्रांत में डिप्टीकमिश्नर कहते हैं— अन्य प्रांतों में उसे कलेक्टर कहते हैं। यही अधिकारी जिले के सब महकमों का साधारणतया उत्तरदायी होता है। जनता की दृष्टि में वही सरकार होती है। प्रायः इण्डियन सिविल-सर्विस के

के कर्मचारी ज़िला-अफसर बनाये जाते है। प्रांतीय सर्विस के योग्य व्यक्ति भी डिप्टी कमिश्नर बनाये जाते हैं। इन्हीं अधिकारियों की सहायता से वास्तव में भारतवर्ष का शासन हो रहा है।

उन अधिकारियों के मुख्य कर्त्तव्य निम्नलिखित है

ज़िले में शांति-रक्षा

ज़िला अधिकारियों का यह सबसे प्रथम कर्त्तव्य है। क़ानून और व्यवस्था को क़ायम रखना शासन का मुख्य उद्देश्य है। भारतीय ज़िलों में ज़िला अफसर पुलिस की सहायता द्वारा चोरों, डाकुओं, ठगों तथा फ़सादी लोगों पर नियन्त्रण रखते हैं। नगर ज़िला व गांव में रहने वाले बदमाशों के नाम रजिस्टर में दर्ज किए जाते हैं और इन्हें अच्छा चरित्र रखने के लिए बाधित किया जाता है।

लगान वसूल करना

यह दूसरा मुख्य कर्त्तव्य है। मद्रास आदि प्रांतों के ज़िला-अधिकारी का नाम कलेक्टर इसी लिए होता है कि वह भूमिकर को एकत्रित करता है। इस कार्य में माल-अफसर, तहसीलदार, नायब तहसीलदार उनकी सहायता करते हैं।

ज़िले के कर्मचारियों का निरीक्षण

ज़िले में अन्य मेजिस्ट्रेट होते हैं, जो ज़िला-अधिकारी के अधीन कार्य करते हैं। उन सबके कार्यों का निरीक्षण करना तथा नियन्त्रण रखना ज़िला-अधिकारी का कर्त्तव्य होता है।

विविध संस्था

इनके अलावा ज़िला अधिकारी को नगर-समितियों का निरीक्षण रखना, जेल, हस्पताल, स्कूल, कृषि-विभाग, सहयोग-समितियां पशुचिकित्सालय, आदि सब स्थानीय महकमों पर साधारण देख-रेख का कार्य भी करना होता है।

ज़िला-अफसर दौरा करने के लिए ज़िले के भिन्न-भिन्न भागों में जाता है और वहां के निवासियों से उनकी शिकायतें सुनता है।

ज़िला-अधिकारियों पर प्रत्येक कमिश्नरी में एक कमिश्नर होता है। वह प्रान्तीय सरकार से उनका सम्बन्ध स्थापित करता है। मद्रास में ऐसे कमिश्नर नहीं होते। फिर भी वहां शासन में कोई त्रुटि नहीं रहती। वास्तव में ऐसे कमिश्नरों को क़ायम रखना प्रान्तीय कोष पर निरर्थक भार है। ज़िला-अफसर सीधा प्रान्तीय सरकारों से सम्बन्ध रख सकते हैं और अधिक उत्तमता से कार्य सम्पादन कर सकते हैं। इन कमिश्नरों को पृथक् करने से किसी न्यूनता को संभावना नहीं। अतः मितव्ययिता की दृष्टि से उचित है कि अन्य प्रान्तों में भी मद्रास का अनुकरण किया जाए।

३. पुलिस

प्रत्येक ज़िले में पुलिस की निश्चित संख्या रखी जाती है। ज़िला सुपरिन्टेन्डेण्ट इसका अध्यक्ष होता है उसके अधीन कई थानेदार होते हैं जो थानों में कई सिपाहियों की सहायता से चोरी, डाका आदि जुर्मों की तहक़ीक़ात करते हैं और अदालतों में अपराधियों को उपस्थित करते हैं। एक थाने में कई चौकियां होती हैं, जहां एक-एक हैड कान्सटेबल होता है जो अपने-अपने इलाकों का उत्तरदायी होता है। पुलिस की तरफ से अदालत में कोर्ट इन्सपेक्टर होते हैं जो अपराधियों का जुर्म सावित करते हैं। गाँवों में थानेदार का बहुत आदर होता है, क्योंकि वहीं वास्तव में वहाँ शान्ति रक्षा का साधन है। बड़े-बड़े नगरों में पुलिस-कमिश्नर होते हैं, जो वहाँ कानून और

व्यवस्था को कायम रखते हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास में ऐसे कमिश्नरों की नियुक्ति होती है। पुलिस के बड़े अफसरों को भारत सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है। बाकी अफ़सरों को प्रान्तीय सरकारें नियुक्त करती हैं।

४. अदालतें

पुलिस अपराधियों का पता लगाती है, परन्तु स्वयं दण्ड नहीं दे सकती। दण्ड देने व न देने का अधिकार अदालतों को है। उनके सम्मुख अपराध का निश्चय किया जाता है।

हर एक ज़िले में दो प्रकार की अदालतें होती हैं फ़ौजदारी और दीवानी। फ़ौजदारी अदालतों में मेजिस्ट्रेट झगड़ा फ़साद के मुकद्दमों का निर्णय करते हैं। भिन्न-भिन्न मेजिस्ट्रेटों को विभिन्न दण्ड देने का अधिकार होता है:—

दीवानी अदालतों का काम रुपयों सम्बन्धी मुकदमों को सुनना है। उसका अध्यक्ष ज़िला-जज होता है जो अपने अधीन सब-जजों का निरीक्षण करता है। उसके पास केवल सब-दीवानी अपीलें आती हैं अपितु फ़ौजदारी अपीलें भी आती हैं। वह ज़िला-जज होने के अतिरिक्त सेशन जज भी होता है और फांसी के मुकदमों का फ़ैसला करता है। किसी भी मेजिस्ट्रेट को फांसी की सज़ा देने का अधिकार नहीं होता। ज़िला-मेजिस्ट्रेट भी जुर्म को फांसी के योग्य बतलाकर सेशन जज की अदालत में मुकदमा भेज सकता है। सेशन जज जूरी की सहायता से उसका निर्णय करता है। जूरी से मतभेद होने पर वह मुकदमे को हाई कोर्ट को भेज देता है। एसेसर भी कई बार फांसी का मुकदमा सुनते हैं। परन्तु उनका निर्णय सेशन जज को बाधित नहीं कर सकता। वह अपनी सम्मति अनुसार स्वयं निर्णय करता है।

सेशन जज से अपील हाईकोर्ट में, जो प्रान्त की राजधानी में होता है, की जा सकती है और वहाँ से प्रिवी कौंसल में जो कि इंग्लिस्तान में है।

५. अन्य महकमे

ज़िले में ज़िला-अफ़सर, पुलिस तथा अदालतों के सिवाय अन्य महकमे भी होते हैं, जैसे हस्पताल, जेल, आबकारी, सड़क, नहर, इत्यादि। इनके अपने-अपने अधिकारी होते हैं। ज़िला-अफसर का उनके कार्यों में सीधा हस्तक्षेप नहीं होता, परन्तु सिविल सर्जन, ज़िला एञ्जीनियर, जेल दरोगा आदि पर उसका निरीक्षण अवश्य रहता है और वास्तव में ज़िले के सब महकमों का उत्तरदायी वही होता है। कृषि-विभाग, पशु चिकित्सालय, सहोद्योग समितियाँ सब अपना अपना कार्य अपने अधिकारियों के अधीन करती हैं--परन्तु उन पर ज़िला-अफ़सर का साधारण निरीक्षण अवश्य होता है।

ज़िला के ये सब महकमे प्रान्तीय सरकार के वज़ीरों के अधीन होते हैं जो उनकी नीति का निश्चय करते हैं। कर्मचारी उसी नीति का अनुसरण अपने-अपने महकमों में करते हैं। ये कर्मचारी कुछ प्रान्तीय सर्विस के होते हैं, जो प्रान्तीय सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं और कुछ इण्डियन सिविल सर्विस के होते हैं, जो भारत-सचिव द्वारा नियुक्त होते हैं। उन पर भी प्रान्तीय सरकारों का नियन्त्रण होता है। इस तरह सब जिलों का प्रबन्ध होता है।

६

केन्द्रीय शासन

भारतवर्ष की शासन-व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। अब देश में स्वराज्य की स्थापना हो चुकी है। स्वतंत्र भारत में भी शासन-प्रणाली का निर्माण करने के लिए एक संविधान-सभा (Constituent Assembly) की भी स्थापना हो चुकी है। इसमें जनता से निर्वाचित लगभग ३०० सदस्य हैं। रियासतों के प्रतिनिधि भी इसके अन्तर्गत हैं। यह संविधान-सभा इस बात का निश्चय कर चुकी है कि भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहेगा या बाहर। भारतवर्ष के पूर्णतया स्वतंत्र होने की अवस्था में हाई कमिश्नर, प्रिवी कौंसिल आदि सब सम्बन्ध टूट सकेगा। वैसे यहां अमेरिका व फ्रांस की तरह रिपब्लिक (Republic) की स्थापना होगी।

इस संविधान-सभा के अधिवेशन प्रायः समाप्त हो चुके हैं। भारतीय प्रतिनिधि शीघ्र ही नवीन शासन-विधान का निर्माण करेंगे। इस परिषद् को अभी अनेक समस्याओं को हल करना है। तभी यह विधान तैयार हो सकेगा। रियासतों के निश्चित विषयों पर भी इस सभा द्वारा निर्णय किया जायगा।

नवीन शासन-विधान की रूपरेखा निम्नलिखित प्रकार से होगी—

देश के केन्द्रीय शासन को मज़बूत बनाया जायगा। इसमें प्रधान अधिकारी राष्ट्रपति (President) होगा, जो मन्त्री-मण्डल की सहायता से केन्द्रीय शासन का संचालन करेगा। मन्त्री-मण्डल व्यवस्थापिका-सभा के प्रति उत्तरदायी होगा और उसके बहुपक्ष के प्रतिनिधियों द्वारा निर्माण किया जायगा। उसी बहुपक्ष के नेता को राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री नियत करेगा और उसके परामर्श पर अन्य सहकारी मंत्रियों की नियुक्ति करेगा।

प्रान्तों में प्रधान अधिकारी गवर्नर अथवा प्रान्तपति होगा। वह प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा के बहुपक्ष के प्रतिनिधियों से बनाए गए मंत्री-मण्डल द्वारा प्रान्त के शासन का संचालन करेगा।

इसके अतिरिक्त संविधान-सभा ने निम्नलिखित सिद्धान्तों को राष्ट्र के पथ-प्रदर्शक तथा आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार किया है। इन्हीं पर राष्ट्र की नीति का संचालन होगा। इनके द्वारा प्रयत्न किया जायगा कि:—

(क) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पर्याप्त जीविका के साधन प्राप्त हों।

(ख) उत्पत्ति के साधनों को इस तरह बांटा जायगा कि उससे समाज के अधिकतम कल्याण का सम्पादन हो।

(ग) ऐसा आर्थिक संगठन बनाया जायगा कि किन्हीं थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में सम्पत्ति का एकत्रीकरण न हो।

(घ) किसी बालक वा बालिका को किशोरावस्था में श्रम-कार्य में नहीं लगाया जायगा।

(ङ) प्रत्येक नागरिक को कार्य प्राप्त करने का अधिकार

होगा। बेकारी, बीमारी, बुढ़ापा तथा असमर्थता की अवस्था में राष्ट्र का कर्त्तव्य होगा कि वह उनकी सहायता करे।

(च) प्रत्येक श्रमिक को उचित तथा पर्याप्त भृति प्राप्त होगी, जिससे वह अपने तथा अपने परिवार का भली-भांति पालन-पोषण कर सके।

(छ) प्रत्येक नागरिक के लिए निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जायगा।

(ज) भारतीय राष्ट्र दलित जातियों की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को उन्नत करने का विशेष यत्न करेगा। अस्पृश्यता को गैर कानूनी घोषित किया जायगा। कोई सार्वजनिक स्थान अस्पृश्य जातियों के लिए निषिद्ध नहीं होगा।

(झ) भारतीय राष्ट्र प्राचीन स्मृति-स्थानों, मन्दिरों आदि की रक्षा करेगा और उनकी सुरक्षा के लिए आवश्यक धन व्यय करेगा।

(ञ) यह राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापना के लिए सब प्रकार की सहायता करेगा।

१ राष्ट्रपति (President)

भाषण दे सकेगा। वह उनका सदस्य नहीं बन सकेगा और किसी वादविवाद में भाग न ले सकेगा। उसे व्यवस्थापिका सभाओं में आवश्यक निर्देश भेजने का अधिकार होगा, जिन पर वहीं विचार किया जायगा। राष्ट्रपति को व्यवस्थापिका-सभाओं को बुलाने, स्थगित करने या विसर्जन करने का भी अधिकार होगा। वह असाधारण अवस्थाओं में स्वयं कानून बनाकर प्रचारित भी कर सकेगा; परन्तु उनको व्यवस्थापिका-सभा द्वारा स्वीकार कराना आवश्यक होगा।

राष्ट्रपति देश की समस्त सैनिक-शक्ति का भी संचालक होगा। युद्ध, संधि आदि सब उसी के नाम पर घोषित किये जायंगे। देश में शासन-प्रणाली के भंग हो जाने पर वही समस्त शासन का उत्तरदायी होगा।

परन्तु उपर्युक्त सब अधिकार अपने मन्त्री-मंडल के परामर्श पर ही, राष्ट्रपति प्रयोग कर सकेगा। विशेषतया प्रधान मंत्री के परामर्श के अनुसार ही देश के शासन का संचालन करना होगा।

राष्ट्रपति को फाँसी-दण्ड को क्षमा करने का भी अधिकार होगा; परन्तु उसमें भी मंत्री-मण्डल के परामर्श का लेना आवश्यक होगा।

राष्ट्रपति को उसकी अयोग्यता की अवस्था में अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा पदच्युत भी किया जा सकेगा। व्यवस्थापिका-सभा के दो तिहाई सदस्यों द्वारा अविश्वास के प्रस्ताव का
आवश्यक होगा।

९. स्वास्थ्यरक्षा-मन्त्री—स्वास्थ्यरक्षा।

१०. रेलवे मन्त्री—रेलवे प्रबन्ध।

११. श्रम-मन्त्री—श्रम-विभाग।

१२. निर्माण-मन्त्री—सड़कों, इमारतों का प्रबन्ध।

१३. खाद्य-मन्त्री—अनाज आदि खाद्यों का प्रबंध।

१४. कृषि मन्त्री—देश की कृषि-उन्नति का प्रबन्ध।

युद्ध के समय युद्ध-मंत्री की नियुक्ति होती है, जो युद्ध का संचालन करता है। भारतवर्ष में देश-विभाजन के बाद शरणार्थियों को फिर बसाने की कठिन समस्या को सुलझाने के लिए एक विशेष शरणार्थी-मंत्री की नियुक्ति हुई है।

२. केंद्रीय व्यवस्थापिका-सभा (Parliament)

राष्ट्रपति अथवा मन्त्री-मण्डल देश का शासन अपनी मनमानी मर्जी के अनुसार नहीं कर सकते। जनतन्त्र प्रणाली में जनता की अपनी इच्छानुसार शासन होता है। जनता अपनी इच्छा का प्रकाशन अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा करती है। यही प्रतिनिधि देश के लिए आवश्यक कानून बनाते हैं। जिनका पालन करना और करवाना राष्ट्रपति एवं मन्त्री-मण्डल का कर्तव्य होता है।

लोक-सभा House of People

इसमें लग-भग ५०० सदस्य होंगे । उनका निर्वाचन सार्वजनिक वोट (Adult Suffrage) के आधार पर होगा, अर्थात् २१ वर्ष के ऊपर का प्रत्येक भारतीय नागरिक स्त्री वा पुरुष—इनके निर्वाचन में भाग लेगा। किसी जाति विशेष का व्यक्ति अपनी जाति के व्यक्ति को वोट नहीं देगा--परन्तु सब जाति के लोग नागरिकता के नाते किसी योग्य व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि निर्वाचित कर सकेंगे । एक सदस्य लगभग ७५०००० व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करेगा।

यह सभा पाँच वर्ष के लिए निर्वाचित होगी । राष्ट्रपति इसे समय से पूर्व भी विसर्जित कर सकेगा और इसका पुनर्निर्वाचन होगा। मन्त्री-मण्डल के सब मन्त्री इस सभा में बैठ सकेंगे और क़ानून बनाने तथा अन्य वादविवाद में भाग ले सकेंगे।

सभा के कार्य-संचालन के लिए एक अध्यक्ष (Speaker) होगा और उसकी अनुपस्थिति में एक उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) होगा। इनका सभा द्वारा ही निर्वाचन होगा । अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर उन्हें पदच्युत भी किया जा सकेगा। इनको साधारणतया वादविवाद में भाग लेने तथा वोट देने का अधिकार न होगा। केवल समतुलित होने की अवस्था में किसी विषय पर वे निर्णायक वोट (Casting Vote) दे सकेंगे।

क़ानून बनाने का प्रस्ताव (Bill) व्यवस्थापिका-सभा के किसी चेम्बर में उपस्थित हो सकेगा। परन्तु अर्थ-सम्बन्धी प्रस्ताव उपर्युक्त लोक सभा में ही पहले प्रस्तुत किया जा सकेगा। अन्य साधारण बिल दोनों सभाओं में स्वीकृत हो जाने-पर तथा राष्ट्रपति से हस्ताक्षर प्राप्त होने पर क़ानून बन सकेगा। यदि दोनों सभाओं

३. फिडरेशन (Fedaration)

१६३५ के शासन-विधान में भारतवर्ष को संघ-राष्ट्र बनाने का निश्चय किया गया था। अमेरिका की तरह यहां भी केन्द्र की अपेक्षा प्रान्तों को अधिक मज़बूत रखने का निर्णय किया गया था। प्रत्येक प्रान्त की भिन्न-भिन्न भाषा, सभ्यता एवं संस्कृति होने के कारण उन्हें अधिक-से अधिक स्वतन्त्र रूप में अपना शासन करने का अवसर उचित माना गया था।

परन्तु १६४७ में भारतवर्ष के स्वतन्त्र हो जाने के बाद तथा विशेषतया पृथक् सभ्यता के नाम पर पाकिस्तान बन जाने के बाद इस देश को एक शक्तिशाली केन्द्र में संगठित करना सबसे अधिक आवश्यक तथा योग्य माना गया । संविधान-सभा के सदस्य केन्द्र को प्रान्तों की अपेक्षा अधिक मज़बूत बनाने के पक्षपाती हैं। संसार की नवीन परिस्थितियों में ऐसा उचित भी है। बिना केन्द्र को बलवान् बनाये देश-रक्षा का प्रश्न ही आजकल विकट बन जाता है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि केन्द्र का प्रान्तों के शासन में अनावश्यक हस्तक्षेप होगा। संघ-शासन-प्रणाली के अनुसार उन्हें अब भी प्रान्तीय-शासन-प्रबन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। वे अधिक विषयों में सर्वथा स्वाधीन होंगे—केवल देश-रक्षा, विदेश सम्बन्ध, यातायात, मुद्रानीति-डाक विभाग आदि राष्ट्रीय मामलों में उन्हें केन्द्र के पूर्णतया अधीन रहना होगा।

देसी रियासतों को भी इन मामलों में केन्द्र की अधीनता स्वीकार करनी होगी। इसी से प्रान्तों तथा रियासतों की अपनी रक्षा हो सकती है और एक-राष्ट्र में सूत्रित होकर उन्नति के मार्ग पर उनका अग्रसर होना सम्भव हो सकता है। अतएव नये शासन-

में मत-भेद हो तो राष्ट्रपति दोनों सभाओं को एकत्रित करके उनके संयुक्त अधिवेशन में बहुपक्ष द्वारा उस बिल की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का निर्णय करायगा। अर्थ-प्रस्ताव उपर्युक्त सभा से स्वीकृत होने के ३० दिन बाद क़ानून बन जायगा—चाहे उसे दूसरी सभा ने स्वीकार किया हो या नहीं।

यदि राष्ट्रपति किसी प्रस्ताव पर हस्ताक्षर न करना चाहे, तो उसे पुनर्विचार के लिए व्यवस्थापिका-सभा के पास लौटा सकता है और वह अपने सन्देश द्वारा उस प्रस्ताव को आवश्यक संशोधन करने का निर्देश कर सकता है। उस प्रस्ताव पर पुनःविचार किया जायगा और यदि उचित होगा तो उन संशोधनों को स्वीकार कर लिया जायगा।

यह सभा प्रान्तों अथवा स्टेटों की प्रतिनिधि सभा होगी।

राज्य-परिषद् (Council of States)

इसके लगभग २५० सदस्य होंगे। इनका निर्वाचन सीधा जनता द्वारा नहीं होगा। अपितु प्रत्येक प्रान्त वा स्टेट को अपनी आबादी के अनुसार निश्चित संख्या तक सदस्य चुनने का अधिकार होगा। लगभग १५ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियत किये जायंगे, जो साहित्य, कला, विज्ञान, शिक्षा, कृषि, अथवा शासन का प्रतिनिधित्व करने वाले होंगे।

इस सभा का सम्पूर्ण विसर्जन कभी न होगा। केवल एक तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष के बाद पृथक् होजायंगे और उनके स्थान पर अन्य सदस्यों का उपर्युक्त विधि के अनुसार निर्वाचन होग।

इस सभा का विशेष कर्त्तव्य दूसरी सभा में विचार किये गए प्रस्तावों पर पुनः विचार करना तथा आवश्यक संशोधन उपस्थित करना है, जिनसे क़ानून बनाने में बहुत सहायता मिलती है।

३. फिडरेशन (Fedaration)

१६३५ के शासन-विधान में भारतवर्ष को संघ-राष्ट्र बनाने का निश्चय किया गया था। अमेरिका की तरह यहां भी केन्द्र की अपेक्षा प्रान्तों को अधिक मज़बूत रखने का निर्णय किया गया था। प्रत्येक प्रान्त की भिन्न-भिन्न भाषा, सभ्यता एवं संस्कृति होने के कारण उन्हें अधिक-से अधिक स्वतन्त्र रूप में अपना शासन करने का अवसर उचित माना गया था।

परन्तु १६४७ में भारतवर्ष के स्वतन्त्र हो जाने के बाद तथा विशेषतया पृथक् सभ्यता के नाम पर पाकिस्तान बन जाने के बाद इस देश को एक शक्तिशाली केन्द्र में संगठित करना सबसे अधिक आवश्यक तथा योग्य माना गया । संविधान-सभा के सदस्य केन्द्र को प्रान्तों की अपेक्षा अधिक मज़बूत बनाने के पक्षपाती हैं। संसार की नवीन परिस्थितियों में ऐसा उचित भी है। बिना केन्द्र को बलवान् बनाये देश-रक्षा का प्रश्न ही आजकल विकट बन जाता है ।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि केन्द्र का प्रान्तों के शासन में अनावश्यक हस्तक्षेप होगा। संघ-शासन-प्रणाली के अनुसार उन्हें अब भी प्रान्तीय-शासन-प्रबन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। वे अधिक विषयों में सर्वथा स्वाधीन होंगे—केवल देश-रक्षा, विदेश सम्बन्ध, यातायात, मुद्रानीति-डाक विभाग आदि राष्ट्रीय मामलों में उन्हें केन्द्र के पूर्णतया अधीन रहना होगा ।

देसी रियासतों को भी इन मामलों में केन्द्र की अधीनता स्वीकार करनी होगी। इसी से प्रान्तों तथा रियासतों की अपनी रक्षा हो सकती है और एक-राष्ट्र में सूत्रित होकर उन्नति के मार्ग पर उनका अग्रसर होना सम्भव हो सकता है। अतएव नये शासन-

विधान में भारतीय राष्ट्र को शक्ति सम्पन्न बनाने का यत्न किया गया है। रियासतों को भी इसी राष्ट्र मे सम्मिलित (Accede) होने की पूर्ण व्यवस्था की गई है और प्रायः सब रियासतें सम्मिलित हो भी चुकी हैं।

४. केन्द्रीय आय व्यय

केन्द्रीय शासन के संचालन के लिए आय की आवश्यकता है। सेना पर सबसे अधिक व्यय होता है। इसके अतिरिक्त रेलवे, डाकखाना, मुद्रापद्धति बैंक, रेडियो-विभाग, विदेश सम्बन्ध, सूचना-विभाग आदि पर भारतीय सरकार को बहुत व्यय करना होता है। इस व्यय को पूरा करने के लिए निम्नलिखित केन्द्रीय आय के स्रोत हैं। ये प्रान्तीय आय के स्रोतों से सर्वथा भिन्न हैं:—

आयात-निर्यात-कर (Import-export Duties) — यह सबसे बड़ा आमदनी का साधन है। विदेशों से आए हुए माल पर टैक्स लगाया जाता है। यह टैक्स, अमीर-गरीब—सब पर समान रूप में पड़ता है।

नमक कर (Salt-tax) — समुद्र के किनारों पर नमक बनाने तथा खानों से नमक निकालने का अधिकार केवल सरकार को है। सरकार द्वारा ठेकेदारों को ठेका दिया जाता है और उनसे कर वसूल किया जाता है। इस कर से भी बहुत आमदनी होती है, क्योंकि अमीर-गरीब सबको यह टैक्स देना पड़ता है।

स्वतन्त्र भारतवर्ष में इस टैक्स को अनुचित समझा गया है और महात्मा गान्धी जी के आदेशानुसार इसे अब खतम कर दिया गया है।

प्रत्येक व्यक्ति से जिसकी आमदनी २५००) रु० से ऊपर है आय-कर लिया जाता है। कृषि की आमदनी पर यह टैक्स नहीं लगता, उस पर भूमि कर (Land Revenue) लगता है—जिसे प्रान्तीय सरकारें वसूल करती हैं। आय-कर से करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष आमदनी होती है।

आय-कर
Income-tax

रेलवे तथा डाक-विभागों से भी करोड़ों रुपए की आमदनी होती है। ये सरकार के व्यापारिक-विभाग हैं। परन्तु इन दोनों विभागों पर व्यय भी बहुत हो जाता है। भारतीय आय-व्यय का बिल अर्थ-मन्त्री द्वारा व्यवस्थापिका सभा में उपस्थित किया जाता है। रेलवे का बजट रेलवे सदस्य द्वारा पृथक् पेश किया जाता है। उन पर विचार करने के बाद राष्ट्र की आमदनी और खर्च पूरा किया जाता है। खर्च अधिक होने की सम्भावना में नए टैक्स लगा दिए जाते हैं, या पिछले टैक्सों को बढ़ाया जाता है।

रेलवे तथा डाक विभाग से आमदनी

५. केन्द्रीय शासन के विभाग

जैसे ऊपर लिखा जा चुका है कि मन्त्री-मण्डल की सहायता के लिए स्थायी अधिकारियों के विभाग हैं, जो वास्तव में शासन का संचालन करते हैं। मन्त्री-परिषद् जिस भी नीति का निर्धारण करता है, उस पर चलना और उसके अनुसार शासन को चलाना उनका कर्त्तव्य है। निम्नलिखित कुछ मुख्य विभागों का स्पष्टीकरण है:—

देश-रक्षा-विभाग (Defence Department)

भारतवर्ष एक विस्तृत देश है। पाकिस्तान के पृथक् होजाने के बाद भी, क्षेत्रफल तथा आबादी की दृष्टि से वह केवल चीन के बाद है। अब भी इसमें ३५ करोड़ व्यक्ति निवास करते हैं। इस देश का पाकिस्तान बन जाने के बाद सीमा-प्रान्त और भी अधिक विस्तृत हो गया है, जिसकी रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त समुद्र तथा आकाश से होने वाले आक्रमणों से भी देश-रक्षा करना सर्वथा आवश्यक है। इसके लिए विशाल सामुद्रिक, आकाश एवं स्थल-सेना की आवश्यकता है।

अंग्रेज़ सेनाओं के चले जाने के बाद देश-रक्षा का बोझ अब हमारे अपने कन्धों पर है। हमारे भारतीय सैनिक वीर ही अब सेनापति (Commader-in-chief) आदि उच्च कर्मचारी हैं। सेना में भर्ती होकर देश-रक्षा में भाग लेना प्रत्येक नवयुवक अथवा युवती का कर्त्तव्य है। प्रत्येक नागरिक को संकट के समय अपनी सेवाओं को राष्ट्र के लिए अर्पित करना चाहिए, क्योंकि यदि राष्ट्र की शत्रुओं से रक्षा ही न हो सकी तो अन्य किसी प्रकार की-शिक्षा, कला, संस्कृति-आदि की उन्नति करना सर्वथा असम्भव है:—

शस्त्रास्त्ररक्षिते देशे-शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते

देश-रक्षा विभाग सैनिक दल को एकत्रित करता है और उसके लिए आधुनिक वैज्ञानिक शस्त्र, अस्त्र तथा अन्य आवश्यक युद्ध-सम्बन्धी सामग्री को भी जुटाता है।

देश रक्षा-विभाग का मन्त्री व्यवस्थापिका-सभा में देश-रक्षा के लिए आवश्यक बजट को स्वीकार कराता है और मन्त्रीमंडल से निर्धारित नीति के अनुसार देश-रक्षा का समस्त प्रबन्ध करता है।

देश की आन्तरिक शान्ति की रक्षा के लिए इस विभाग की आवश्यकता है। बाह्य आक्रमणों से रक्षा करने

गृह विभाग HomeDepartment

के लिए तो पूर्वोक्त विभाग है और सेना द्वारा उनका निराकरण किया जाता है। परन्तु आन्तरिक शान्ति के लिए पुलिस की व्यवस्था इसी विभाग के अधीन की जाती है।

वैसे प्रत्येक प्रान्त को अपने अपने क्षेत्र में शान्ति रक्षा करने लिए अपना अपना प्रबंध करने का पूर्ण अधिकार है परन्तु अन्तिम उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार पर ही है। किसी रियासत से भी शान्ति स्थापित करने में असमर्थता सिद्ध होने पर केन्द्रीय सरकार द्वारा हस्ताक्षेप किया जा सकता है और वहाँ शान्ति-स्थापना की जा सकती है। गृह-मन्त्री समय २ पर प्रान्तों के गृहमन्त्रियों का सम्मेलन बुला कर उन्हें शान्ति-रक्षा के साधनों का निर्देश करता रहता है।

विदेश-सम्बन्ध विभाग (External Affairs Department)

देश के स्वतन्त्र होने के बाद, यह नया विभाग स्थापित किया गया है। अब हम स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में समान स्थिति के अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। अब हमारे प्रतिनिधि-दूत (Ambassadors) अमेरिका, रूस फ्रांस, टर्की इंग्लैण्ड आदि सब देशों में अपने भारतीय कर्मचारियों के साथ रहते हैं। और अन्य देशों के प्रतिनिधि-दूत हमारे देश में रहते हैं। इन्हीं दूतों के द्वारा परस्पर-सम्बन्ध सुदृढ़ किये जाते हैं। युद्ध वा सन्धि की घोषणा आदि भी इन्हीं दूतों द्वारा की जाती है। इंग्लैण्ड तथा ब्रिटिश राष्ट्र-संघ (British Commonwealth) के अन्तर्गत राष्ट्रों

में रहने वाले दूतों को हाईकमिश्नर (High Commissioner) कहा जाता है। लण्डन में हमारा ऐसा ही प्रतिनिधि है।

अर्थ-विभाग (Finance Department)

इस विभाग का कर्त्तव्य देश के आय-व्यय की व्यवस्था करना है। कोई भी अन्य विभाग इस विभाग की स्वीकृति के बिना कोई व्यय नहीं कर सकता। इस विभाग को व्यवस्थापिका-सभा से वजट पास करवाकर उसके अनुसार ही आय को एकत्रित करने तथा भिन्न-भिन्न विभागों पर व्यय करने का अधिकार होता है।

व्यवसाय-विभाग (Supply and Industry Department)

यह विभाग देश में उत्पत्ति बढ़ाने की योजनाएं तैयार करता है। आजकल जब संसार में कपड़े आदि की अत्यन्त कमी है, यह कारखानों द्वारा सब आवश्यक वस्तुओं को उत्पन्न करने तथा उन्हें जनता तक उचित क़ीमतों पर दिये जाने की व्यवस्था करता है। गत महायुद्ध के समय तथा बाद ही ऐसे विभाग की आवश्यकता अनुभव हुई है।

शिक्षा-विभाग

यद्यपि शिक्षा एक प्रान्तीय विषय है, तथापि सारे देश में एक आदर्श शिक्षा-प्रणाली को चलाने के लिए एक नीति निर्धारित करना केन्द्रीय-शिक्षा विभाग का कर्त्तव्य है। विशेषतया उच्च शिक्षा का संचालन केन्द्रीय विभाग द्वारा होता है।

रेलवे-विभाग

१८५३ में सबसे प्रथम बम्बई से थाना (२१ मील की दूरी) तक रेलवे लाईन बनी थी। लग-भग ४०००० मीलों में रेल का जाल फैला चुका है। उसका श्रय गवर्मेण्ट तथा अन्य प्राइवेट कम्पनियों को है। अब सरकार ने प्रायः सब रेलवे अपने अधिकार में कर ली हैं। प्रारम्भ

में पर्याप्त पूंजी न होने के कारण, रेलवे निर्माण का सारा कार्य सरकार द्वारा न हो सकता था।

रेलवे का प्रबन्ध करने के लिए एक रेलवे बोर्ड, रेलवे मन्त्री की अध्यक्षता में दिल्ली में स्थापित है। उसमें डायरेक्टर आदि कई अधिकारी होते हैं, जो देश के कृषि, व्यवसाय, व्यापार आदि हितों के अनुसार रेलवे नीति का संचालन करते हैं। सेनाओं को सीमा-प्रान्तों तक पहुँचाने के लिए भी रेलवे का निर्माण किया जाता है। रेलवे का बजट आजकल अलग उपस्थित किया जाता है।

यातायात-विभाग

डाक, तार, टेलीफोन के विभाग भी केन्द्रीय शासन के अधीन हैं। भारतवर्ष में लगभग ७५००० डाकखाने हैं, जो २ लाख मील में फैले हुए हैं। इससे जनता को कितना सुख पहुँचा है, यह सर्वसाधारण व्यक्ति जानता ही है।

तारों का जाल भी लगभग १ लाख मील में फैला हुआ है। इससे व्यापार को, युद्ध के समय सेना के प्रबन्ध में तथा जनता के सुख दुःख के समाचार शीघ्रता से पहुँचाने में कितनी सुविधा होती है, यह प्रत्येक शिक्षित नागरिक अच्छी तरह समझता है। टेलीफोन और वायरलेस के आविष्कारों को भारतवर्ष में प्रयोग में लाकर सार्वजनिक हित का सम्पादन किया जा रहा है। भारतीय सरकार लाखों रुपया इन विभागों पर व्यय करती है और जनता को सुख या आराम पहुंचाती है।

रेडियो-विभाग द्वारा भी सार्वजनिक हित का सम्पादन किया जा रहा है। देहली, कलकत्ता, बंबई, लखनऊ, नागपुर, पटना आदि स्थानों से संगीत, भाषण, नाटक आदि का आयोजन किया जाता है। जिनसे जनता को न केवल आनन्द प्राप्त होता है, अपितु शिक्षा

बहुत कम हो गए हैं। वह मन्त्री-मण्डल को परामर्श-मात्र दे सकता है, वैसे मन्त्री-मण्डल स्वयं ही प्रान्तीय शासन का सारा प्रबन्ध करता है। शांति रक्षा, अर्थ, शिक्षा स्वास्थ्य, व्यवसाय, भूमि-कर आदि सब विषय मन्त्री-मण्डल के अधीन हैं। वे टैक्स लगा सकते हैं और उन्हें प्रांत की उन्नति के लिए अपनी इच्छानुसार खर्च कर सकते हैं। ये मन्त्री-मण्डल केवल व्यवस्थापिका-सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं—न भारत-मन्त्री, न गवर्नर और न केन्द्रीय शासन के प्रति ही।

केन्द्रीय शासन तथा प्रन्तीय शासन के विषयों को पृथक्-पृथक् कर दिया गया है। कुछ विषय दोनों के लिए समान हैं। परन्तु प्रांतीय विषयों में केंद्र को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। इस तरह प्रान्तों को स्थानीय विषयों में १६३५ के विधान के अनुसार पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी है। इसी को प्रान्तीय स्वाधीनता कहते हैं। इस समय पूर्वी पंजाब, युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त बम्बई, मद्रास, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम—इन ६ प्रान्तों में प्रान्तीय स्वाधीनता स्थापित है।

२. प्रांतीय स्वाधीनता का विकास

सन् १८५८ में भारतवर्ष का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से निकल कर, ब्रिटिश पार्लमेण्ट के हाथों में आया। १८६१ में सब से प्रथम, कौंसिल एक्ट पास हुआ, जिसके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रांतों में व्यवस्थापिका सभाओं का प्रारम्भ किया गया। १८७७ में लार्ड मेयो ने प्रांतीय सरकारों को प्रथम बार कुछ टैक्स एकत्रित करने तथा उनको प्रांतों में खर्चने का अधिकार दिया। १८८५ में नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई और अधिक अधिकारों की याचना की

जाने लगी। कांग्रेस के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप १८९२ में नया कौंसिल एक्ट पास हुआ, जिसके अनुसार व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों की संख्या को बढ़ाया और गैर सरकारी मेम्बरों को भी नियत किया गया। इन्हें आय-व्यय के विषय पर विचार करने का भी अधिकार दे दिया गया—यद्यपि उस पर वोट देने का अधिकार नहीं मिला।

परन्तु इन सुधारों से देश की जनता को संतोष न हुआ और अधिक सुधारों की पुनः माँग की जाने लगी। १९०९ में एक और कौंसिल एक्ट पास हुआ, जिसके अनुसार निर्वाचित सदस्यों को व्यवस्थापिका सभाओं में बैठने का अधिकार प्राप्त हुआ।

सन् १९१४—१८ में महायुद्ध हुआ। इसमें भारतवर्ष ने धन तथा जन से ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता की। ब्रिटिश सम्राज्य की विजय हुई। फलतः १९१९ में भारतवर्ष के नवीन शासन-विधान की रचना हुई। इसमें भारतवर्ष को जनतन्त्र-प्रणाली की संस्थाए देने तथा क्रमशः पूर्ण-औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करने की घोषणा की गई। घोषणा के बाद भारतीय व्यवस्थापिका सभाओं में बहुत परिवर्तन हुए। प्रांतीय शासन में मन्त्री-मण्डल के दो विभाग किये गए। एक व्यवस्थापिका सभाओं के प्रति उत्तरदायी बन गया, दूसरा गवर्नर के प्रति। पहले विभाग को हस्तांतरित विभाग (Transferred Department) तथा दूसरे को सुरक्षित. विभाग (Reserved Department) कहा गया। पहले विभाग में भारतीय मंत्री शिक्षा, कृषि, नगर-समितियों आदि का प्रबन्ध करते थे। वे मंत्री व्यवस्थापिका सभा द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर पृथक् किये जा सकते थे। दूसरे विभाग के अधीन आवश्यक विषय पुलिस, अर्थ, भूमिकर आदि थे। इन पर व्यवस्थापिका सभा का

कोई नियन्त्रण न था। ये विभाग प्रांतीय गवर्नर की अधीनता में कार्य करते थे। इसके मन्त्री गवर्नर द्वारा पृथक् किये जा सकते थे।

इस तरह आधा शासन उत्तरदायी था, आधा अनुत्तरदायी। इसी को द्वैध शासन (Dyarchy) कहते हैं, जो १६३५ के नवीन शासन-विधान के प्रचलित होने से पूर्व तक भारतीय प्रांतों में प्रचलित रहा। इस द्वैध शासन को किसी प्रांत में सफलता न हुई। बंगाल तथा मध्यप्रान्त में तो यह सर्वथा असफल रहा। केवल मद्रास में, जहाँ गवर्नर की बुद्धिमत्ता के कारण शासन के दोनों विभागों से समानता का व्यवहार किया गया, किंचित् सफलता हुई। अन्य सब प्रान्तों में प्रायः उत्तरदायी मन्त्रियों तथा अनुत्तरदायी मंत्रियों का मतभेद रहता और व्यवस्थापिका सभाएँ सदा अपने मन्त्रियों का समर्थन करतीं और दूसरे मंत्रियों से उपस्थित बजट को भी स्वीकार न करतीं। गवर्नर अपने विशेष अधिकारों से उन गवर्नर अपने विशेष अधिकारों से उन अस्वीकृत बजटों को स्वीकार करते तथा प्रांतों का कार्य-संचालन करते। इसी असुविधा को देखकर १६२७ में एक कमीशन भेजा गया, जिसके प्रधान सर साइमन थे। उसने समस्त देश का पर्यटन करके प्रांतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने की सिफारिश की। कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए लण्डन में तीन बार गोलमेज़ कांफ्रेंस बुलाई गई। परिणामस्वरूप, १६३५ में ब्रिटिश पार्लमेंट में नया शासन-विधान स्वीकार किया गया। इसके अनुसार भारतवर्ष के ६ प्रांतों में प्रांतीय स्वाधीनता को स्थापित किया गया, जिसका ऊपर निर्देश किया जा चुका है। अब स्वतन्त्रता के साथ यह प्रांतीय स्वाधीनता दृढ़ हो गई।

२. गवर्नर

इसकी नियुक्ति केन्द्रीय मन्त्री-परिषद् की सिफारिश पर गवर्नर जनरल अथवा राष्ट्रपति द्वारा होती है। वह गवर्नर जनरल के प्रति प्रांत के सुशासन के लिए उत्तरदायी होता है। परन्तु गवर्नर अपने मन्त्रीमण्डल द्वारा ही प्रांत का शासन करता है। गवर्नर के साधारणतः निम्नलिखित कर्त्तव्य तथा अधिकार हैं:-

(क) प्रांत में शांतिरक्षा स्थापित करना।

(ख) अल्प संख्यक जातियों के हितों की रक्षा करना।

(ग) प्रांत के पदाधिकारियों के हितों की रक्षा करना।

(घ) प्रांत में स्थित देशी रियासतों के हितों की रक्षा करना।

(ङ) गवर्नर जनरल द्वारा संचालित कानूनों तथा आदेशों का प्रांतों में पालन करवाना।

गवर्नर विशेष अवस्थाओं में अपने क़ानून भी बना सकता है। वह व्यवस्थापिका सभा को विसर्जित कर सकता है, उसके बनाये हुए कानून को रद्द कर सकता है—अस्वीकृत प्रस्तावों को स्वीकार भी कर सकता है। परंतु गवर्नर इन अधिकारों का प्रयोग नहीं करते। प्रथा के अनुसार उन्हें प्रान्त का सब शासन अपने मन्त्री-मण्डल पर ही छोड़ देना होता है। यदि वह उनके कार्यों में हस्ता-क्षेप करे, तो मन्त्री-मण्डल त्यागपत्र दे देता है और प्रान्तीय स्वाधीनता समाप्त हो जाती है। ऐसी अवस्था में १६३५ के शासन-विधान के अनुसार, गवर्नर अपने हाथों में सारे प्रान्त का शासन ले लेता है, और कुछ अपने सलाहकारों की सहायता से प्रान्तीय शासन करता है। भारतवर्ष के कुछ प्रान्तों में ऐसी ही अवस्था उत्पन्न हुई थी कि जनता के निर्वाचित मन्त्री-मण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया था। वहां गवर्नर स्वयं शासन-कार्य करते रहे।

४. मंत्री-मण्डल

प्रान्तीय स्वाधीनता के स्थापित होने के बाद मन्त्री-मण्डल की स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई है। ये जनता के प्रतिनिधि होने के कारण इंगलैंड की केबिनेट की तरह प्रान्त के वास्तविक शासक होते हैं। गवर्नर व्यवस्थापिका सभा के नेता को प्रधानमन्त्री नियत करता है। प्रधानमन्त्री अपने सहायक मन्त्रियों को नियुक्त करता है। सारा मन्त्री-मण्डल व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर मन्त्री-मण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है और दूसरा मन्त्री-मण्डल जनता की इच्छानुसार बनाया जाता है।

इन मन्त्रियों के अधीन प्रान्त के भिन्न-भिन्न विभाग होते हैं। उन विभागों का नीति-संचालन इन मन्त्रियों द्वारा होता है—शेष कार्य विभागों के अध्यक्ष अपने सहायकों द्वारा करते हैं। पंजाब के मन्त्रीमण्डल में ७ मन्त्री हैं। इनके अधीन शांति-रक्षा, अर्थ, भूमिकर, कृषि तथा स्थानीय शासन आदि के विषय हैं। साधारण विषय इन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं। मद्रास आदि बड़े प्रान्तों में आवश्यकतानुसार १०, १२, मन्त्री होते हैं। प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्री-मण्डल स्थापित हैं। इन्होंने अपने-अपने प्रान्तों में शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि आदि के लिए अल्पकाल में ही कई उपयोगी कार्य किये हैं। पंजाब में कृषि-उन्नति तथा किसानों को कर्ज़दारी से बचाने के लिए कई अच्छे कानून पास किये गए हैं। जनता के निर्वाचित मन्त्री-मण्डल वास्तव में अपने देश की सेवा करने में सफल हुए हैं।

५. प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाएं

सन् १६१६ के सुधारों के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित सदस्यों की बहुसंख्या थी, परन्तु सरकार द्वारा नामज़द मेम्बर, लगभग एक तिहाई संख्या में होते ही थे। नए शासनविधान के अनुसार इन सभाओं के प्रायः सब सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं।

मद्रास, बंगाल, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, विहार तथा आसाम में व्यवस्थापिका सभा के दो भाग हैं। एक लेजिस्लेटिव एसेम्बली तथा दूसरा लेजिस्लेटिव कौंसिल कहलाता है। शेप प्रान्तों में केवल एक लेजिस्लेटिव एसेम्बली है। एसेम्बली का निर्वाचन सामान्य श्रेणी द्वारा होता है—अतः इसे कौंसिल की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त हैं। प्रत्येक बिल इन दोनों भागों से गुज़र कर गवर्नर से स्वीकृति प्राप्त करने के बाद कानून बनता है।

विधान-परिषद्
Legislative Council

इस कौंसिल की आवश्यकता पर मतभेद रहा है। प्रान्तों में इसकी उपयोगिता भी कम है। फिर भी एसेम्बली की शीघ्रता को रोकने के लिए तथा कानूनों की पुनरावृत्ति करने के लिए उन कौंसिलों को आवश्यक समझा गया है। इन कौंसिलों में नामज़द मेम्बर भी होते हैं—निर्वाचित सदस्यों की यद्यपि अधिकता होती है। वही व्यक्ति इन कौंसिलों के निर्वाचन में वोट देने का अधिकार रखता है—

(१) जो ५०००) रु० से अधिक आमदनी पर आय-कर देता हो।

(२) जो २५०) रु० प्रतिमास पेन्शन पाता हो।

(३) जो कुछ विशेष सरकारी उच्चपदों पर, जैसे मिनिस्टर

हाईकोर्ट जज, यूनिवर्सिटी-फेलो इत्यादि हो।

कौंसिल के मेम्बर बनने के लिए भी कुछ योग्यता की आवश्यकता है। यह कौंसिल प्रायः अनुभवी, वयोवृद्ध, राजनीतिज्ञ नेताओं की होती है। वे अपने अनुभव द्वारा एसेम्बली की सहायता करते हैं। कौंसिल को एक स्थिर समिति के रूप में रखा गया है। केवल एक तिहाई मेम्बर तीन वर्ष के बाद इस समिति से पृथक् हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये सदस्य निर्वाचित होते हैं। इस तरह सम्पूर्ण कौंसिल का निर्वाचन कभी नहीं होता।

विधान सभा

अधिक महत्त्वपूर्ण व्यवस्थापिका-सभा लेजिस्लेटिव एसेम्बली है। यह प्रत्येक प्रान्त में स्थापित है। यह जनता के वोट से निर्वाचित होती है, अतः इसका अधिक सम्मान तथा आदर है। उसके निर्वाचन में भाग लेने के लिए निम्नलिखित योग्यताओं में किसी एक की आवश्यकता है:—

१—मत देने वाला आय-कर या कमेटी का टैक्स कम-से-कम ५०) रु० प्रतिवर्ष देता हो।

२—वह ५) रु० तक भूमि-कर देता हो।

३—वह ६ से १२ एकड़ ज़मीन का मालिक हो।

४—वह २०००) रु० कीमत की कोई सम्पत्ति रखता हो, जिसका ६०) रु० वार्षिक किराया हो।

५—किसी गांव में ज़ैलदार, इनामदार, सफेदपोश या नम्बरदार हो।

६—कम-से-कम पाँचवीं जमात पास हो।

७—किसी मताधिकारी पति की पत्नी को भी वोट देने का अधिकार प्राप्त है।

मत देने वाले की आयु कम-से-कम २१ वर्ष होनी चाहिए। उसे उसी क्षेत्र में निवास करना चाहिए, जिसमें उसे वोट देने का अधिकार प्राप्त हो।

सन १६१६ में जनता के केवल ३ प्रतिशत भाग को वोट देने का अधिकार प्राप्त था। अब १४ प्रतिशत जनता निर्वाचन में भाग ले सकती है। यह संख्या अत्यल्प है। वास्तव में सभी तरुण व्यक्ति को वोट देने का हक़ होना चाहिए। सब स्वतन्त्र देशों में २१ वर्ष से ऊपर प्रत्येक युवक वा युवती को वोट देने का अधिकार प्राप्त है।

१६३५ के विधान में निर्वाचन के लिए एक अत्यन्त अनुचित तथा जातीयता विनाशक साधन का आश्रय लिया गया। साम्प्रदायिक दृष्टि से निर्वाचन-क्षेत्र निश्चित कर दिये गए। पंजाब व्यवस्थापिका सभा के १७५ सदस्यों में ८४ मुसलमानों का, ४२ हिन्दुओं का, ३१ सिखों का, तथा अन्य जातियों का होना आवश्यक था। इतना ही नहीं इन सदस्यों के निर्वाचन में प्रत्येक सम्प्रदाय के अपने-अपने व्यक्ति ही भाग ले सकते, अर्थात् हिन्दू वोटर हिन्दू सदस्यों के लिए वोट दे सकते, मुसलमान, मुसलमान सदस्यों के किए तथा सिख, सिख सदस्यों के लिए।

इस विधि के दोष अत्यन्त स्पष्ट हैं। प्रथम, इसके द्वारा एकता की भावना का जागृत होना सर्वथा असम्भव हो जाता है। जब प्रत्येक सम्प्रदाय अपने सम्प्रदाय के हितों का ही चिन्तन करता है, तब जातीय हितों की अत्यन्त हानि होती है। मुसलमान सदा मुसलमानी भावों के साथ तथा हिन्दू सदा हिन्दू भावों के साथ प्रान्तीय-शासन में भाग लेता है, वह देश के व्यापक हितों का ध्यान नहीं करता। अतएव भारतीयता के भावों की उत्पत्ति

में बाधा होती है। जातीयता को इसी साम्प्रदायिकता के कारण प्रबल आघात पहुँचा है और हिन्दू और मुसलमान पृथक्-पृथक् जाति का दावा भरने लगे। मुसलमान इसी भाव के कारण पृथक् राष्ट्र पाकिस्तान बना चुके हैं। यह सब साम्प्रदायिक निर्वाचन शैली का कटु परिणाम है, जिससे हमारे देश को बहुत हानि हुई है।

साम्प्रदायिक निर्वाचन का दूसरा दुष्प्रभाव यह है कि वास्तव में योग्य व्यक्ति व्यवस्थापिका-सभा में नहीं चुने जाते। अयोग्य हाथों में प्रान्तीय शासन की बागडोर चली जाती है। इससे प्रान्त में अशान्ति, अव्यवस्था तथा झगड़े-फ़साद उठ खड़े होते हैं। भारतवर्ष में होने वाले हिन्दू-मुस्लिम फ़सादों का मूल कारण यही साम्प्रदायिक निर्वाचन है। जब तक इस शैली का निराकरण नहीं किया जाता, और सम्मिलित निर्वाचन शैली को प्रचलित नहीं किया जाता तब तक इस देश में आन्तरिक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। अतएव नये शासन-विधान मे साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रथा को समाप्त कर दिया गया है। केवल १० वर्ष के लिए भिन्न-भिन्न अल्पसंख्या के प्रतिनिधियों के स्थान सुरक्षित कर दिये गए हैं। परन्तु उन्हें भी वोट सबके लेने पड़ेंगे, केवल अपने सम्प्रदाय के नहीं।

६. व्यवस्थापिका सभाओं के कर्तव्य

प्रान्तीय स्वाधीनता के साथ व्यवस्थापिका सभाओं के कर्त्तव्य विस्तृत हो गए हैं। वे प्रान्त के सब विषयों के सम्बन्ध में कानून बना सकती हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, भूमि-कर; जंगल, आब-कारी, पुलिस, जेल स्थानीय शासन आदि सब विषय प्रान्तीय शासन के अंतर्गत है। परन्तु कई विषयों के सम्बन्ध में कुछ

आवश्यक प्रतिबन्ध भी हैं। उदाहरणार्थ, किसी देशी रियासत के महाराजा, गवर्नर, हाईकोर्ट के जज आदि के व्यवहार पर कोई समालोचना नहीं की जा सकती। कई विषयों में गवर्नर की पूर्व स्वीकृति लेकर क़ानून बनाया जा सकता है, परन्तु ऐसे विषय बहुत कम हैं।

प्रत्येक बिल तीन बार एसेम्बली में उपस्थित होता है, एक बार कमेटी में जाता है। पूर्ण विचार के बाद उसे पास किया जाता है। गवर्नर की स्वीकृति के बाद वह कानून बनता है। जिन प्रान्तों में विधान-परिषद् अथवा लेजिस्लेटिव कौंसिलें हैं—वहाँ एसेम्बली से बिल इस कौंसिल में आता है और फिर पास होकर गवर्नर की स्वीकृति के लिए जाता है।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाएं अपने प्रान्त का बजट भी स्वयं पास करती हैं। आवश्यकता होने पर नया टैक्स लगा सकती हैं। अर्थमंत्री आय-व्यय का विवरण उपस्थित करता है और विचार-विनिमय के बाद इसे स्वीकार किया जाता है। एसेम्बली या कौंसिल के मेम्बर बजट में संशोधन भी उपस्थित कर सकते हैं। बजट का बिल पहले एसेम्बली में ही पेश किया जाता है। एसेम्बली तथा कौंसिल के मतभेद की अवस्था में सम्मिलित अधिवेशन होता है और बहुसंख्या के अनुसार निश्चय किया जाता है।

७. प्रान्तीय शासन के विभाग

प्रान्तीय शासन के चार मुख्य विभाग हैं। गवर्नर इसका साधारण निरीक्षण करता है। मन्त्रीमण्डल विशेष निरीक्षण करता है। प्रत्येक मन्त्री को इन विभागों के कुछ कर्त्तव्य सौंपे जाते हैं, जिन्हें वे अपने सहायक कर्मचारियों की सहायता से पूरा करता है:—

प्रांत में शान्ति-रक्षा के लिए निम्न संस्थाओं की स्थापना की जाती है :—

१. पुलिस

इसका कर्त्तव्य अपराधियों को पकड़ना है। प्रांत में एक इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस होता है, जो प्रांत के शान्ति-रक्षा-विभाग सब ज़िलों में अपने अधीन अफसरों की सहायता से शांति-रक्षा की चेष्टा करता है। डाकुओं और चोरों को पकड़ा जाता है और उनसे नागरिकों के जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा की जाती है। बड़े-बड़े नगरों में पुलिस-कमिश्नर शान्ति-रक्षा का कार्य करते हैं। रेलवे में भी अशांति को रोकने के लिए पुलिस अफसर तथा कर्मचारी होते हैं।

२. अदालतें

प्रत्येक प्रान्त में एक हाईकोर्ट होता है। ज़िलों में ज़िला-अदालतें होती हैं। पुलिस से पकड़े हुए अपराधी इन अदालतों में लाये जाते हैं और उनके अपराध का निर्णय किया जाता है। अपराध सिद्ध होने की अवस्था में ही यथोचित दण्ड दिया जाता है।

३. जेल

अपराधियों को प्रायः जेलखानों में भेजा जाता है। अपराध के अनुसार, उन्हें कम अधिक समय के लिए वहीं रहना होता है। उनसे परिश्रम का काम कराया जाता है। बालक अपराधियों के लिए पृथक् जेल होते हैं, उनमें उनकी शिक्षा का प्रबन्ध होता है और उनकी बुरी आदतों को सुधारने का प्रयत्न किया जाता है। प्रांतों में एक इन्स्पेक्टर जनरल आफ़ प्रिज़न्स होता है, जो ज़िले के अन्य कर्मचारियों के साथ प्रांत के जेलखाने का प्रबन्ध करता है।

प्रांतों में कुछ महकमे ऐसे हैं, जिन से सरकार को आर्थिक लाभ होता है। उदाहरणार्थ-भूमि-कर स्टाम्प, आबकारी

अर्थ-विभाग

इत्यादि। भारतवर्ष की भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारों को भूमिकर से ही सब से अधिक आमदनी होती है। बङ्गाल, विहार, उड़ीसा, बनारस (संयुक्तप्रांत) तथा उत्तरी सरकार (मद्रास) में स्थिर लगान की प्रथा है। अन्य प्रांतों में अस्थिर लगान लिया जाता है। बीस या तीस वर्षों के बाद वहाँ पुनः भूमियों का निरीक्षण होता है और उनकी उत्पत्ति के अनुसार लगान निश्चित किया जाता है।

कचहरियों के स्टाम्प से भी प्रान्तीय सरकारों को बहुत अधिक लाभ होता है। शराब, अफ़ीम आदि के ठेकेदारों से भी अच्छी आमदनी होती है। इससे करोड़ों रुपये प्रांतीय सरकारों को प्राप्त होते हैं। कई प्रान्तों में मादक द्रव्यों का सर्वथा निरोध (Prohibition) किया जा रहा है। इससे इस आमदनी में कमी हो जायगी। परन्तु जातीय हित के लिए इस आमदनी का परित्याग करना अनुचित न होगा। इसके स्थान पर अन्य विभागों से आमदनी पैदा की जा सकती है।

जाति-निर्माण विभाग

प्रान्तीय शासन के अधीन यह सब से आवश्यक विभाग है। इसी विभाग के उन्नत होने पर देश का सच्चा कल्याण हो सकता है। मान्टफोर्ड सुधारों के समय से, ये विभाग भारतीय मन्त्रियों के हाथ में हैं। वे इस विभाग में अपने अन्य अल्प साधनों के अनुसार पर्याप्त उन्नति कर चुके हैं। इस विभाग में निम्नलिखित उपविभाग सम्मिलित हैं:—

१. शिक्षा

भारतवर्ष अपनी अशिक्षितता के लिए बदनाम है। इस देश में मुश्किल से १० प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है। १८३४ ईसवी से ही भारतीय सरकार ने देश मे शिक्षा फैलाने की समस्या की तरफ ध्यान दिया है। अब यह विषय प्रान्तीय सरकारों के हाथ में है और जनता से निर्वाचित मन्त्री इसका प्रबन्ध करते हैं। प्रत्येक प्रांत में एक शिक्षाध्यक्ष (Director of Public Instruction) होता है। उसके नीचे कई इन्स्पेक्टर आफ स्कूल तथा जिला इन्स्पेक्टर होते हैं। स्त्री-शिक्षा के लिए पृथक् स्त्री निरीक्षिका होती है। शिक्षा निरीक्षक का कार्य प्राइमरी तथा हाई विद्यालयों का निरीक्षण करना होता है। इसके अतिरिक्त आजकल सार्वजनिक शिक्षा (Adult Education) का प्रबन्ध इसी विभाग के अधीन किया जाता है। प्रांतीय स्वाधीनता के स्थापित होने के बाद से बाधित प्रारंभिक शिक्षा को प्रचलित करने के लिए बहुत उद्योग किया जा रहा है और सब प्रान्त शिक्षित जनसंख्या बढ़ाने के लिए परस्पर प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। यह अच्छा चिह्न है और हमें आशा करनी चाहिए कि कुछ वर्षों के प्रयत्नों के बाद देश में अन्य उन्नत राष्ट्रों की तरह शत-प्रतिशत नागरिक शिक्षित हो जायंगे। इस विभाग पर सरकार द्वारा जितना भी व्यय किया जाय, उतना ही थोड़ा है।

प्रत्येक प्रांत में उच्च शिक्षा के लिए यूनीवर्सिटी (University) स्थापित है। प्रांत का गवर्नर इसका चांसलर होता है और योग्य विद्वान् व्यक्ति को वाइस चांसलर नियुक्त किया जाता है जो सब प्रबन्ध कार्य करता है। भारतवर्ष मे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, देहली आदि इन सब प्रान्तों में विश्वविद्यालय स्थापित हैं। विश्वविद्यालयों

में बड़े-बड़े प्रोफेसर अध्यापन का कार्य करते हैं। और अनुसन्धान आदि द्वारा विद्या के क्षेत्र को विस्तृत करते हैं।

साधारण शिक्षा के अतिरिक्त, कृषि, व्यवसाय, व्यापार आदि शिक्षा के लिए भी शिक्षणालयों को प्रांतों में स्थापित किया गया है। इन संस्थाओं की उन्नति में देश की उन्नति है।

२. स्वास्थ्य

जनता को बीमारियों से बचाने के लिए तथा स्वस्थ बनाने के लिए प्रांतों में स्वास्थ्य-विभाग स्थापित किये जाते हैं। प्रत्येक ज़िले में हेल्थ अफ़सर होते हैं जो ज़िले के गांवों में जाकर साधारण जनता को स्वास्थ्य के नियमों को समझाते हैं तथा रोगों से बचने के उपाय बतलाते हैं। इसी तरह हर एक ज़िले, तहसील, कस्बे में सिविल हस्पताल होते हैं, जिनमे सिविल सर्जन आदि डाक्टर चिकित्सा द्वारा रोगियों के दुःख दूर करते हैं।

३. कृषि

भारतवर्ष की ७० प्रतिशत जनता का प्रधान व्यवसाय कृषि है। कृषि की उन्नति में ही देश की आर्थिक अवस्था उन्नत समझी जा सकती है। प्रत्येक प्रांत में कृषि विभाग द्वारा अच्छे बीज, खाद, पशु आदि से कृषकों की सहायता की जाती है। परन्तु अभी यह सहायता बहुत अपर्याप्त है। भारतीय किसान अब भी दरिद्रता की मूर्ति हैं।

४. पशु-चिकित्सा विभाग

कृषि के लिए पशुओं का बलवान् तथा नीरोग होना आवश्यक है। प्रत्येक प्रांत में इस विभाग का संगठन किया गया है और स्थान-स्थान पर पशु-चिकित्सा के लिए हस्पताल खोल दिये गए हैं।

५. सहोयोग समितियां

कृषि की उन्नति के लिए सहोयोग समितियों की भी अत्यन्त आवश्यकता होती है। इनके द्वारा कृषक कम सूद पर कृषि के लिए ऋण ले सकते हैं। पंजाब गवर्नमेण्ट ने इन समितियों को स्थापित करने में बहुत परिश्रम किया है। इसी कारण पंजाब के कृषकों की अवस्था अन्य प्रान्तों के कृषकों से कहीं अच्छी है।

६. व्यवसाय

केवल कृषि से प्रान्त-निवासियों की जीविका का प्रबन्ध नहीं हो सकता। बिना व्यावसायिक उन्नति के बेकारी का प्रश्न हल नहीं हो सकता। अतः प्रांतीय सरकारें भिन्न-भिन्न व्यवसायों को अपने प्रांत में स्थापित तथा उत्साहित करती हैं।

७. सड़कें, नहर, इमारत आदि

इनका बनाना भी जातीय निर्माण के लिए आवश्यक है। बिना सड़क नहर आदि के देश की अधिक उन्नति नहीं हो सकती। अतः प्रत्येक प्रांत में चीफ़ इंजीनीयर के अधीन नहर आदि के विभाग होते हैं, जो प्रांत के कृषि व्यवसाय, व्यापार आदि की उन्नति में सहायक होते हैं।

८. व्यापारिक विभाग

प्रांतीय सरकारें कई व्यापारिक विभागों की स्थापना करती हैं, जिनसे उन्हें आर्थिक लाभ होता है। पंजाब में इस दृष्टि से मंडी हाइड्रो एलेक्ट्रिक स्कीम को जारी किया गया है। इससे सारे पंजाब में बिजली पहुँचाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। अभी तक इससे लाभ नहीं हुआ है। परन्तु कुछ वर्षों में आशा की जाती है कि इससे लाभ होना शुरू हो जायगा।

जंगल का महकमा भी व्यपारिक दृष्टि से लाभप्रद है। गवर्नमेण्ट इसका प्रबन्ध कान्सर्वेटर आदि अफसरों द्वारा करती है। प्रत्येक प्रांत में जंगलों से आर्थिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाता है।

९. नवीन शासन-विधान में प्रांतीय शासन :—

गवर्नर

नवीन शासन-विधान में गवर्नर राष्ट्रपति द्वारा ५ वर्ष के लिए नियुक्त होगा। उसकी आयु नियुक्ति के समय कम-से-कम ३५ वर्ष होगी। प्रान्तीय मुख्य मन्त्री (प्रान्तपति) के निर्वाचित होने की अवस्था में गवर्नर का भी जनता द्वारा निर्वाचित होना उचित नहीं समझा गया। इससे परस्पर सङ्घर्ष की सम्भावना थी।

गवर्नर का कर्त्तव्य प्रान्तीय शासन की साधारण देख-रेख करना होगा। वह प्रतिदिन के शासन-प्रबन्ध में कोई हस्ताक्षेप न कर सकेगा। उसका मन्त्री-मण्डल ही वस्तुतः सब शासन करेगा।

मन्त्री-मण्डल

केन्द्र की तरह प्रान्तों में भी जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिका-सभा के बहुपक्ष का नेता ही गवर्नर द्वारा मुख्य मन्त्री (Chief Minister) नियुक्त किया जायगा। वह मुख्य मन्त्री अपनी सहायता के लिए अन्य मन्त्रियों को नियुक्त करेगा। इस मन्त्री का उत्तरदायित्व व्यवस्थापिका-सभा के प्रति होगा। अविश्वास का प्रस्ताव-स्वीकृत होने पर इसे त्याग-पत्र देना होगा।

व्यवस्थापिका-सभा

बड़े प्रान्तों में दो सभाओं की व्यवस्था होगी और छोटे प्रान्तों में एक ही सभा होगी:—१. (Legislative Assembly) (विधान-सभा) प्रथम सभा होगी। इसके निर्वाचन में २१ वर्ष से ऊपर का प्रत्येक व्यक्ति स्त्री और पुरुष भाग ले सकेगा। प्रायः एक लाख आबादी

के पीछे एक सदस्य निर्वाचित होगा। प्रांत की कुल अबादी के अनुसार इस विधान सभा के सदस्यों की संख्या निश्चित होगी। यह पांच वर्ष के लिए निर्वाचित होगी। २. (Legislative Council) (विधान-परिषद्)—यह चेम्बर लोक-सभा पर अंकुश रखने के लिए होगा। इसके अधिकार सीमित होंगे। परन्तु समय-समय पर अपने परामर्श द्वारा विधान-सभा की सहायता करेगा।

इसका पुनः निर्वाचन न होगा। इसके कुल सदस्य विधान-सभा की संख्या का चौथाई होंगे। इनमें एक तिहाई प्रति दो वर्ष के बाद पृथक् हो जायंगे—और उनका केवल पुनः निर्वाचन होगा। इस समिति की कुल संख्या के एक तिहाई सदस्य विधान-सभा द्वारा चुने जायंगे और लगभग आधे शिक्षा, साहित्य, कला, विज्ञान, कृषि, शासन-प्रबन्ध आदि के प्रतिनिधि होंगे। और शेष गवर्नर द्वारा नियुक्त होंगे।

विधान-सभा के कार्य-संचालन के लिए अध्यक्ष और उपाध्यक्ष होंगे जो सभा द्वारा ही निर्वाचित होंगे। विधान-परिषद् के इसी तरह पृथक् अपने प्रधान तथा उपप्रधान होंगे।

इस तरह प्रांत सर्वथा स्वाधीन हो जायगे। १९३५ के कानून से भी अधिक प्रांतीय स्वतन्त्रता (Provincial Automony) उन्हें प्राप्त होगी। लोक-निर्वाचित गवर्नर तथा मन्त्री-मण्डल अधिक विश्वास के साथ अपने प्रांतों का शासन करेंगे।

नये शासन-विधान में प्रांतों को भी स्टेट कहा जायगा। अमेरिका की स्टेटों की तरह उन्हें पूर्ण स्थानीय स्वतन्त्रता होगी। केवल राष्ट्रीय विषयों, अर्थात् रक्षा, विदेश-सम्बन्ध, यातायात एवं मुद्रा-नीति तथा डाक आदि के प्रबन्ध को छोड़कर बाकी सब प्रबन्ध उनके अपने हाथ में होंगे।

परन्तु फिर भी केन्द्र का अनुशासन सब प्रांतों पर रहेगा और उन्हें भिन्न-भिन्न दिशाओं में बिखरने न देकर उनकी शक्तियों को सामूहिक रूप में केन्द्र के अधीन संगठित किया जायगा।

८

न्याय-शासन

प्रत्येक देश में न्याय-शासन (Rule of law) का स्थापित होना अत्यन्त आवश्यक है। न केवल व्यक्तियों के परस्पर झगड़ा होने पर न्याय की आवश्यकता है, अपितु व्यक्तियों का गवर्नमेण्ट से झगड़ा हो जाने पर भी रक्षा की आवश्यकता है। कई बार सरकार जनता के साथ अन्याय का व्यवहार कर सकती है, पुलिस-अफसर निष्कारण किसी को तंग कर सकते हैं, मेजिस्ट्रेट द्वेषवश किसी व्यक्ति को हानि पहुँचा सकते हैं। जनतन्त्र-प्रणाली में बहुसंख्यक दल के लोग अनुचित कानून बना सकते हैं तथा अल्पसंख्यक लोगों को पीड़ित कर सकते हैं। नागरिकों के हितों की रक्षा के लिए देश में स्वतन्त्र न्याय-शासन की आवश्यकता है, जो किसी शक्तिशाली व्यक्ति से, शासक से अथवा राजनैतिक दल से भय न करे और केवल सत्य का आश्रय लेते हुए न्याय की स्थापना करे।

ब्रिटिश जाति की न्याय-प्रणाली वास्तव में अनुकरणीय है। वहाँ बड़े छोटे का बिना लिहाज़ किये न्याय-शासन किया जाता है। कानून के सम्मुख सब बराबर हैं। बड़े-से-बड़े व्यक्ति को वही दण्ड मिल सकता है जो छोटे को दिया जा सकता है। सरकार को स्वयं अपराधी होने की अवस्था में दण्ड स्वीकार करना पड़ता है।

भारतवर्ष में इंग्लैण्ड के न्याय-शासन का प्रायः अनुकरण किया गया है। यहाँ के न्यायकर्ता भी इंग्लैंड के जजों के समान स्वतन्त्र, निर्भय तथा निष्पक्ष होते हैं और स्थापित कानूनों के अनुसार सब न्याय करते हैं। न्याय सबके लिए समान है। भारतीय व विदेशी नागरिक इस दृष्टि से न्याय के सामने समान अधिकार रखते हैं।

एक और दोष, जो भारतीय न्याय शासन में अब तक विद्यमान है, वह ज़िलों में, ज़िला-अफ़सरों के हाथ में पुलिस-प्रबन्ध के साथ न्याय-अधिकारों का होना है। एक मेजिस्ट्रेट, जो पुलिस की सहायता से अपराधियों को पकड़वाने का उत्तरदायी है, न्याय के आसन पर बैठकर निष्पक्ष न्याय नहीं कर सकता या वह पुलिस के ही कर्त्तव्य कर सकता है या न्याय के। दोनों कर्त्तव्यों को एक अधिकारी के हाथ में रखना न्याय को कमज़ोर करना है।

२. न्याय शासन-प्रणाली

भारतवर्ष के गांवों में पंचायतें होती हैं। ये गांवों की अदालतें हैं। इनमें छोटे-छोटे मुक़दमे पेश किये जा सकते हैं और उनका फ़ैसला पंचायत द्वारा सबके सम्मुख सुनाया जाता है।

तहसीलों में तहसीलदार होते हैं। ज़िलों में फ़ौजदारी मुक़दमे के लिए मेजिस्ट्रेट तथा दीवानी मुकदमों के लिए सब-जज होते हैं। इनका वर्णन ज़िला शासन के अध्याय में किया जा चुका है। उनमें मेजिस्ट्रेट अथवा सब-जजों के न्याय से सन्तुष्ट न होने पर ज़िले के प्रधान सेशन जज के सामने अपील की जा सकती है। क़त्ल के मुकदमे में वह फांसी का दण्ड भी दे सकता है।

सेशनजज से हाईकोर्ट में अपील की जा सकती है। हाईकोर्ट प्रत्येक प्रांत की राजधानी में होते हैं और दीवानी, फौजदारी मुकदमों का निर्णय करते हैं। हाईकोर्ट से मुकदमे प्रिवी कौंसिल

में ले जाये जा सकते हैं। यह भारतवर्ष की अन्तिम अदालत है। इसके निर्णय के बाद कहीं अपील नहीं की जा सकती। कुछ शासन-विधान सम्बन्धी अपीलें फेडरल कोर्ट आफ़ इण्डिया में भी की जा सकती हैं, जिसकी स्थापना भारतवर्ष में, कुछ वर्ष हुए, की गई है। यह कोर्ट भारत की राजधानी दिल्ली में है।

३. प्रांतीय हाईकोर्ट

हमने अभी बतलाया है कि प्रांत की राजधानी में एक हाईकोर्ट होता है। छोटे प्रान्तों में जुडीशल कमिश्नर की अदालत प्रांतीय अदालत होती है। हाईकोर्ट मे जजों की संख्या राष्ट्रपति द्वारा नियत की जाती है। उनकी नियुक्ति भी वही करता है। उनको पृथक् भी वही कर सकता है। जज प्रायः ६० वर्ष की आयु में सेवा-मुक्त किये जाते हैं। जजों की एक तिहाई संख्या सिविल सर्विस के कर्मचारियों की होती है। एक तिहाई बैरिस्टरों की तथा स्थानीय वकीलों की होती है।

प्रांतीय हाईकोर्ट का कार्य ज़िला अदालतों की अपीलों को सुनना है। वे फांसी के दण्ड को विशेपतया सुनते हैं। और उनसे दण्ड स्वीकृत होने के बाद ही अपराधियों को फांसी का दण्ड दिया जाता है। हाईकोर्ट के निर्णय प्रांतीय अदालतों के पथप्रदर्शन का कार्य करते हैं और उन्हें कानून की तरह समझा जाता है। पूर्वी पंजाब हाईकोर्ट पंजाब की राजधानी शिमला में है। इस में ८ जज हैं, जिन्हें ४०००) रु० प्रतिमास वेतन मिलता है। उनके वेतनों में गवर्नमेण्ट द्वारा वृद्धि या कमी नहीं की जा सकती, जिससे वे किसी सरकारी प्रभाव में आ सकें। अतएव वे सरकार के विरुद्ध मुकद्दमों को भी निष्पक्षता से सुनते तथा निर्णय देते हैं। इन जजों के ऊपर एक चीफ जज होता है। जिसका वेतन ५०००) रु० प्रति-

मास होता है। वह भी अपीलें आदि सुनता तथा अपने साथी जजों के साथ अथवा अकेले न्याय करता है। उसका मुख्य कार्य प्रांतीय अदालतों का निरीक्षण तथा नियन्त्रण करना है। वह ज़िलों में स्वयं जाकर लोगों तथा वकीलों की शिकायतें सुनता है और रिश्वत लेने वाले अधिकारियों को न्याय-शासन से पृथक् करता है। मेजिस्ट्रेट व सब जज इसी के अधीन होते हैं और न्याय कार्य में अकुशल होने पर सेवा से अलग किये जा सकते हैं।

४. फेडरल कोर्ट (Federal Court of India)

प्रत्येक फ़िडरेशन में फेडरल कोर्ट का होना आवश्यक होता है। इसका मुख्य कार्य शासन-विधान की व्याख्या करना तथा सन्देह उत्पन्न होने पर उसका निर्णय करना है। अमेरिका में यह सबसे ऊंची अदालत है वहां यह शासन-विधान की संरक्षक समझी जाती है।

भारतवर्ष में इसके दो प्रकार के कर्त्तव्य हैं :—

(क) प्रांतों में परस्पर अथवा प्रांत तथा केन्द्र के मध्य किसी विवाद के खड़ा होने पर निर्णय देना।

(ख) प्रांतीय हाईकोर्ट से भेजे हुए शासन-विधान सम्बन्धी प्रश्नों पर निर्णय देना।

कभी कभी शासन-विधान की व्याख्या के लिए गवर्नर जनरल अथवा राष्ट्रपति भी इस कोर्ट का परामर्श लेता है। सन् १९३५ के कानून के अनुसार फेडरल व्यवस्थापिका सभा के प्रस्ताव स्वीकार करने पर ५०००० रुपये तक के दीवानी मुकद्दमे भी इस फेडरल कोर्ट के सामने निर्णय के लिए उपस्थित किये जा सकेंगे। आजकल हाईकोर्ट के दीवानी मुकद्दमों की अपील प्रिवी कौंसिल में जाती है जो बहुत दूर होने के कारण जनता की पहुँच से परे है।

अतः फेडरल कोर्ट के कार्यों में दीवानी मुकदमों की अपील सुनने की कार्य-वृद्धि करना भारतवर्ष में न्याय-शासन के हित के लिए होगा।

फेडरल कोर्ट में इस समय पांच जज हैं। उनमें एक को चीफ जस्टिस आफ इण्डिया कहते हैं। प्रत्येक जज को किसी प्रांतीय हाईकोर्ट में ५ वर्ष जज होने का अनुभव प्राप्त होना चाहिए अथवा १५ वर्ष बैरिस्टर होकर कानून की प्रेक्टिस का अनुभव होना चाहिए। इन जजों की नियुक्ति इंग्लैंड के सम्राट् द्वारा होती है। वह ही उन्हें पृथक् कर सकता है। प्रायः ६५ वर्ष की आयु में इन्हें कार्य से मुक्त कर दिया जाता है।

फेडरेशन में देसी रियासतों के सम्मिलित होने के बाद देसी रियासतों के परस्पर अथवा प्रांतों अथवा केन्द्र के साथ विवाद खड़ा होने पर फेडरल कोर्ट शासन-विधान सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय कर सकेगा। देसी रियासतों के हाईकोर्ट के जज भी फेडरल कोर्ट में नियुक्त किये जा सकेंगे। फेडरल कोर्ट के मुकद्दमों की अपील प्रिवी कौंसिल में की जा सकेगी। परन्तु भारतीय जनता फेडरल कोर्ट को ही सब विषयों में अन्तिम कोर्ट बनाने के पक्ष में है। पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के साथ ऐसा हो जाना अत्यन्त आवश्यक है।

५' प्रिवी कौंसिल (Privy Council)

इसका असली नाम जुडीशल कमेटी (Judicial Comemittee) है। ब्रिटिश साम्राज्य की यह अन्तिम अदालत है। भारतवर्ष के हाईकोर्टों के मुकद्दमे आजकल इसी के सम्मुख पेश होते हैं। यह लण्डन में बैठती है। इसमें इंग्लैंड का लार्डचांसलर, ला लार्ड तथा कुछ औपनिशिक जज होते हैं। भारतवर्ष के भी जज इसमें

विद्यमान होते हैं। भारतीय मुकद्दमों के उपस्थित होने पर भारतीय जज उन्हें सुनते हैं और अन्य विदेशी जज भी सम्मिलित होते हैं। प्रायः भारतवर्ष से अपील के काग़ज़ इंग्लैंड के वैरिस्टरों को भेज दिये जाते हैं और वे प्रिवी कौंसिल के सामने अपीलों को रखते हैं। प्रिवी कौंसिल का निर्णय अन्तिम होता है। इसके बाद किसी अन्य अदालत में अपील नहीं की जा सकती। प्रायः बड़े-बड़े दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमे ही भारतवर्ष से इस कौंसिल के सामने जाते हैं। जब तक भारतवर्ष ब्रिटिश सम्राज्य के अन्तर्गत रहेगा तब तक न्याय का यह सम्बन्ध स्थापित रहेगा।

९

देशी रियासतें

१. स्वतंत्र भारत में रियासतें

अगस्त १५, १९४७ से पूर्व भारतवर्ष में लगभग ६५० रियासतें थीं। इनकी आबादी लगभग ९ करोड़ तथा क्षेत्रफल ७ लाख वर्ग मील था। भारत की अंग्रेज़ी सरकार का इन पर पूर्ण प्रभुत्व था। कोई रियासत सरकार की इच्छा के विरुद्ध किसी प्रकार का विदेश-सम्बन्ध नहीं रख सकती थी। आन्तरिक शासन में भी अंग्रेज़ी सरकार का दखल था। प्रबन्ध करने में अयोग्य सिद्ध होने के कारण कई राजाओं और महाराजाओं को गद्दी से उतारा भी गया था।

अंग्रेज़ी सरकार के भारतवर्ष से पृथक् हो जाने के बाद सर्वोच्च प्रभुत्व (Paramountcy) स्वतन्त्र भारत की अपनी राष्ट्रीय गवर्नमेंट के हाथ में आ गया है। अब भारतीय सरकार के अधीन

पृथक् रियासत-विभाग (States Ministry) का आयोजन किया गया है, जिसके निरीक्षण में रियासतों का शासन होता है।

सरदार वल्लभभाई पटेल ने इन रियासतों को संगठित करने तथा उनमें जनतन्त्र शासन स्थापित करवाने में बहुत बड़ा काम किया है। रियासत-विभाग के मन्त्री होने की हैसियत से उन्होंने रियासतों के एकत्रीकरण का वह अद्भुत काम किया है, जो अंग्रेज़ी सरकार भी नहीं कर सकी थी। उनके प्रयत्नों से देश का नक़्शा ही बदल गया है।

रियासतों के सम्बन्ध में श्री पटेल की नीति सर्वथा सफल रही है, जिसके अनुसार:—

(क) छोटी रियासतों को खत्म कर दिया गया है और उन्हें समीपस्थ प्रांतों में अथवा बड़ी रियासतों में मिला दिया गया है।

(ख) मध्यम श्रेणी की रियासतों को परस्पर संघ बनाकर एकत्रित कर दिया गया है और उनके शासन-प्रबन्ध को केन्द्रित कर दिया गया है।

(ग) बड़ी-बड़ी उन रियासतों को अपनी स्थिति में रहने दिया गया है, जो स्वयं स्वतन्त्र शासन-व्यवस्था करने में समर्थ रह सकती थीं।

(घ) सब रियासतों में जनतन्त्र शासन-प्रणाली प्रचलित करने की योजना की गई है, जिसमें निर्वाचित प्रतिनिधि-सभाओं द्वारा सब प्रबन्ध किया जायगा। राजा लोग शासन में कोई दखल न दे सकेंगे। मन्त्री-मण्डल ही सब शासन का उत्तरदायी होगा।

उपर्युक्त नीति के फलस्वरूप लगभग २३ छोटी-छोटी रियासतें

उड़ीसा प्रांत में सम्मिलित की गईं १४ मध्य प्रान्त में १७ बम्बई में, २ बिहार में तथा कुछ अन्य प्रांतों के अन्तर्गत की गईं। कुछ पहाड़ी रियासतों को मिलाकर हिमाचल प्रदेश नाम से नवीन प्रांत बनाया गया, जिसका प्रबन्ध सीधा भारतीय सरकार के हाथ में रखा गया। इस तरह लगभग २४० छोटी-छोटी रियासतों को भारतीय सरकार तथा प्रांतीय सरकार के सीधे शासन में मिला लिया गया है। बड़ोदा जैसी बड़ी तथा प्राचीन रियासत को भी बम्बई-प्रान्त में मिला दिया गया है।

मध्यम श्रेणी की लगभग ३०० रियासतों को परस्पर मिलाकर संघ बन जाने के लिए प्रेरित किया गया। इस वक्त तक निम्न रूप में छः संघ स्थापित हो चुके हैं:—

संघ	अन्तर्गत रियासतों की संख्या	क्षेत्रफल मील	आबादी लाख	आय लाख
१. सौराष्ट्र संघ	२१७	३१,६८५	३५,२२	८००,००
२. मत्स्य	४	७,५३६	१८,३८	१८३,०६
३. विन्ध्य प्रदेश संघ	३५	२४,६१०	३५,६९	२४३,३०
४. राजस्थान संघ	१४	३६,६७७	५२,६१	८१६,६७
५. मध्यभारत संघ	२०	४६,२७३	७१,५०	७७६,४२
६. पटियाला तथा पूर्वी पंजाब संघ	८	१०,११९	३४,२४	५००,००

उदयपुर प्रमुख रियासतें हैं। राजस्थान में उदयपुर, जोधपुर, जैसलमेर तथा बीकानेर मिलाकर वृहद्-राजस्थान हाल ही में बना दिया है। मध्यभारत अथवा मालवा सब में ग्वालियर, इन्दौर, राजगढ़, रतलाम मुख्य रियासतें हैं। पटियाला सब में पटियाला, कपूरथला, नाभा, जींद, फरीदकोट, मलेर कोटला, नालागढ़ तथा कलसिया आठ रियासतें सम्मिलित हैं। अभी कोचीन ट्रावनकोर-संघ की स्थापना हुई है।

२. रियासतों का शासन

स्वतन्त्र भारत में रियासतों की शासन-व्यवस्था सर्वथा भिन्न होगई है। पहले तो इन रियासतों में राजा, महाराजाओं का एकसत्तात्मक शासन चलता था, और उनको ब्रिटिश सरकार की सहायता प्राप्त होती थी। ब्रिटिश सरकार को भी इन रियासतों से बहुत लाभ था। युद्ध के दिनों में इनसे धन तथा सेना की पर्याप्त सहायता इनसे मिलती थी। अतएव इनके एकसत्तात्मक राज्यों को कायम रखना ब्रिटिश सरकार के अपने हित में था।

परन्तु अब स्वतंत्र भारत में पूर्ण जनतंत्र प्रणाली स्थापित हो जाने के बाद इन रियासतों के लिए एकसत्तात्मक प्रणाली पर कायम रहना असम्भव हो गया है। अब यह प्रणाली प्रत्येक रियासत में पहुँच गई है। सब रियासतों में मन्त्री-मण्डल नियुक्त हो गए हैं, जो जनता के प्रतिनिधि हैं और जनता से निर्वाचित लोक-सभाओं की इच्छानुसार शासन-प्रबन्ध करते हैं।

बड़ी-बड़ी रियासतें

मैसूर आदि बड़ी रियासतों में भी प्रधानमन्त्री जनता के प्रतिनिधि हैं—वहाँ की निर्वाचित लोक-सभाएँ आवश्यक

कानून बनाती हैं। उन्हीं को अपनी-अपनी रियासतों के लिए संविधान तैयार करने का अधिकार दिया गया है। जब तक नया संविधान पूर्ण रूप से तैयार नहीं होता—ये ही अन्तरिम सभाएँ, प्रांतीयमण्डल की सहायता से शासन करेंगी। इन रियासतों के राजा महाराजा केवल, वैधानिक शासक (Constitutional Rulers) के रूप में शासन का निरीक्षण करेंगे।

रियासत-संघों की नई योजना के अनुसार सम्मिलित रियासतों की एक संयुक्त लोक-सभा होगी—संयुक्त मंत्री मण्डल होगा-और समस्त शासन-प्रबंध अलग-अलग न होकर संयुक्त रूप में होगा। संघ में एक ही हाईकोर्ट होगी—एक ही पुलिस शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विभागों का अध्यक्ष होगा और संयुक्त मन्त्री-मण्डल समस्त शासन का प्रबंध करेगा। सम्मिलित रियासतों के राजाओं में से एक राजप्रमुख तथा एक उपराजप्रमुख निर्वाचित होगा, जो संघ के वैधानिक शासक के रूप में शासन का साधारण निरीक्षण रखेंगे। उन्हें शासन में अन्यथा, दखल का अधिकार न होगा। इस शासन-व्यवस्था से बहुत-सा अनावश्यक खर्च बच जायगा और प्रबन्ध की त्रुटियाँ भी दूर होजायँगी। राज-प्रमुख आदि को अवश्य वैयक्तिक भत्ता (Privy Purse) मिलना रहेगा—जो समस्त भारतवर्ष में लगभग २ करोड़ प्रतिमास का होगा। यह व्यय भी सर्वथा निरर्थक है। आशा है निकट भविष्य में ही इस व्यय को कम कर दिया जायगा।

३. रियासतें तथा भारत सरकार

अनुशासन में रहना होगा :—

१—राष्ट्ररक्षा (Defence)
२—विदेश सम्बन्ध (Foreign relations)
३—यातायात (Communications)

आन्तरिक शासन में तभी केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप कर सकेगी, जब किसी रियासत में अशान्ति तथा अव्यवस्था भयानक रूप धारण कर लेगी।

रियासतों के प्रतिनिधि जनता द्वारा निर्वाचित होकर भारतवर्ष की केन्द्रीय व्यवस्थापिका-सभा में सदस्य बन सकेंगे और राष्ट्र-रक्षा, विदेश सम्बन्ध तथा यातायात के विषयों में अपनी सम्मति प्रदान कर सकेंगे। इस समय भी भारत की संविधान-परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधि भाग ले रहे हैं। उन्हें भारत के संविधान बनाने में अपनी स्वतन्त्र सम्मति प्रकाशित करने का अधिकार है।

४. हैदराबाद—काश्मीर

रियासतों की समस्या प्रायः सुलझ चुकी है। वे भारत-राष्ट्र के अङ्ग बन चुके हैं। सरदार पटेल के प्रशंस्य प्रयत्नों से हमारा राष्ट्र आगे से अधिक संगठित हो चुका है। केवल रियासत काश्मीर का प्रश्न बाकी है। काश्मीर के महाराजा तथा प्रजा ने भारत-राष्ट्र में सम्मलित होना स्वीकार कर लिया है। परन्तु पाकिस्तान उसे अपने में सम्मिलित करने के लिए सैनिक शक्ति का प्रयोग कर रहा है। हैदराबाद की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि उसे भारत में ही अन्तर्गत होना अनिवार्य था। अतएव अब हैदराबाद भारत राष्ट्र का अङ्ग बन गया है। काश्मीर की समस्या भी शीघ्र हल हो जायगी।

संसार की वर्तमान प्रमुख प्रगतियां

१०

साम्यवाद

१. साम्यवाद की उत्पत्ति

१८८३ में एक महान् समाज-सुधारक विश्वनेता की उत्पत्ति हुई। इसका नाम कार्ल मार्क्स था। इसी ने साम्यवाद अथवा सोशलिज्म के सिद्धान्त को जन्म दिया, जो आज बीसवीं सदी में संसार का प्रबलतम विचार है। इस समय रूस में इस सिद्धान्त को व्यवहार में लाया जा रहा है। कार्ल मार्क्स के बाद लेनिन तथा लेनिन के बाद स्टैलिन ने इस सिद्धान्त को अपने राष्ट्र में क्रियात्मक रूप में परिणत किया। नवम्बर १९१७ में रूस में राज्य-क्रान्ति हुई। यह फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति से कम महत्त्वपूर्ण नहीं थी। इस समय राष्ट्रनायक लेनिन ने घोषणा की कि हम मजदूरों के हाथ में शक्ति देंगे, हम भूमि पर किसानों का स्थापित करेंगे। हम भूखों को रोटी देंगे और देश में शान्ति स्थापित करेंगे। इस घोषणा के पश्चात् रूस में साम्यवाद के अनुसार राष्ट्र का पुनर्निर्माण किया गया और एकसत्ता को समाप्त करके मजदूरों का राज्य स्थापित किया गया।

२. साम्यवाद का सिद्धान्त

भाग उत्पत्ति के मुख्य साधन श्रम-जीवी को प्राप्त होता है। उसका कथन था कि पूंजीपति को अपनी योग्यता तथा श्रम के अनुसार वेतन लेने के अतिरिक्त, अधिक लाभ लेने का अधिकार नहीं है। उस पर वास्तविक अधिकार श्रमजीवियों का है, जिसके परिश्रम से ही कोई वस्तु उत्पन्न हो सकती है।

३. साम्यवाद के प्रकार

नीचे साम्यवाद के भिन्न-भिन्न रूपों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है:—

पूर्ण-साम्यवाद Communism

इसमें वैयक्तिक सम्पत्ति का सर्वथा स्थान नहीं है। देश के अनाज वस्त्र, मकान आदि सब वस्तुओं पर राष्ट्र का अधिकार होगा। मज़दूर कारखानों में कपड़ा आदि उत्पन्न करने का कार्य करेंगे, परन्तु समस्त उत्पत्ति पर राष्ट्र का स्वत्व होगा। इसी तरह मकान आदि का निर्माण व्यक्तिगत श्रम द्वारा होगा, परन्तु उस पर भी राष्ट्र का प्रभुत्व होगा। राष्ट्र का कर्त्तव्य, इन सब वस्तुओं द्वारा जन-साधारण की आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। एक समान कोष से सब व्यक्तियों को आवश्यकतानुसार वस्तुएं प्रदान की जायंगी।

यह योजना आज तक अक्रियात्मक रही है। कारण यही है कि बड़े-बड़े राष्ट्रों में ऐसा होना सम्भव ही नहीं। इसके अतिरिक्त व्यक्तियों की स्वार्थ-प्रवृत्तियाँ निःस्वार्थ रूप में कार्य करने के लिए व्यक्ति को प्रेरित नहीं कर सकतीं। कोई श्रमी पूरे चित्त से परिश्रम का कार्य नहीं कर सकता, जब उसे अपने परिश्रम के फल को प्राप्त करने तथा उसका भोग करने की आशा न हो। ऐसे पूर्ण साम्यवाद का प्रचलित होना सर्वथा असम्भव है।

जातीय साम्यवाद
Collectivism

इस साम्यवाद का आजकल बहुत समर्थन किया जाता है। इसके अनुसार वैयक्तिक, छोटी-छोटी सम्पत्ति यथापूर्व स्थापित रहेगी। मकान, वस्त्र, अनाज, व्यक्तियों के अपने-अपने होंगे। वे उन्हें स्वयं उत्पन्न करेंगे और उनका स्वयं उपभोग करेंगे। परन्तु इन वस्तुओं के महान् उत्पादक साधनों पर जाति का अधिकार होगा। बड़े-बड़े कारखाने, जिनसे बहुत मुनाफा होता है और जिनके कारण विषमता बढ़ती जा रही है, पूंजीपतियों के हाथ में न रहकर जाति के हाथ में होंगे और जाति द्वारा उनका प्रबन्ध होगा और मुनाफा भी जाति के कोष में जायगा। जैसे आजकल रेलवे आदि बड़े व्यापारिक कार्य सरकार अपने प्रबन्ध में रखती है और उसके मुनाफ़े पर भी सरकार का अधिकार होता है, इसी तरह कपड़ा, लोहा, मांट आदि के बड़े-बड़े कारखानों पर सरकार का प्रबन्ध होगा और वहां के कर्मचारी रेलवे कर्मचारियों की तरह सरकार से वेतन पावेंगे और आर्थिक लाभ पर उनका अधिकार न होगा। इसी तरह बड़े-बड़े भूमिपतियों से भूमियां लेकर सरकार द्वारा उनका प्रबन्ध कर दिया जायगा और उनके मुनाफों को भी सरकारी कोष में डाला जायगा।

प्रत्येक सभ्य राष्ट्र स्वीकार करता है। इस साम्यवाद का अर्थ यह है कि राष्ट्र निर्धन व्यक्तियों की सहायता करना अपना कर्तव्य समझे। देश के मज़दूरों तथा कृषकों के हित की रक्षा करना इस साम्यवाद का उद्देश्य है। परन्तु राष्ट्र किसी भूमि-पति की भूमि को व पूंजीपति के कारखाने को छीनता नहीं है। वह इन्हें भूमिपति के हाथ रखकर उनकी उत्पत्ति पर भारी टैक्स लगाता है। मृत्यु के समय उत्तराधिकारियों पर भारी कर (Inheritance TAX) लगाकर बहुत-सी धन-राशि राजकीय कोष में एकत्रित करता है। उससे वह निर्धनों के लिए निःशुल्क शिक्षा, हस्पताल, पब्लिक पार्क आदि की योजना बनता है। इंग्लैंड में निर्धन मजदूरों को बेकारी की हालत में राष्ट्र द्वारा सहायता दी जाती है। वृद्धावस्था में निराश्रित व्यक्तियों को पेंशन मिलती है और उनके परिवार की रक्षा होती है।

राष्ट्रीय साम्यवाद State Socialism

यही साम्यवाद आजकल के राष्ट्रों को स्वीकृत है और इसके द्वारा संसार के अधिकतम कल्याण की सम्भावना है। भारतवर्ष में भी इसी साम्यवाद का अनुकरण किया जा रहा है। टैक्सों की मात्रा बढ़ाई जा रही है और उनके धन से जातीय निर्माण के विभागों को परिपुष्ट किया जा रहा है।

यह साम्यवाद वर्तमान रूस में प्रचलित है। सन् १६१८ की राज्य-क्रांति के बाद वहाँ इसकी स्थापना हुई। रूस की प्रत्येक उपज पर सरकार का अधिकार हो गया। देश-भर की सम्पूर्ण वैयक्तिक सम्पत्ति पर भी सरकार का अधिकार हो गया। जमींदारों से जमीनें छीन ली गईं, पूंजीपतियों के कारखाने ले लिये गए।

बोल्शेविज्म

बोल्शेविक सरकार केवल मज़दूरों की रह गई। विद्रोहियों को बड़ी क्रूरता के साथ दबा दिया गया।

बोल्शेविज़्म के हिंसामय साधनों की प्रायः बड़ी आलोचना की जाती है। मतभेद रखने वाले कितने ही निरपराध व्यक्तियों को रूस में गोली का निशाना बनाया गया, हज़ारों की संख्या में शिक्षकों तथा अध्यापकों का वध कराया गया, जिन्होंने बोल्शेविज़्म के सिद्धान्त को विद्यालयों में पढ़ाने से इन्कार किया। लाखों भूमिपतियों तथा पूंजीपतियों को स्वत्व से वंचित करके राष्ट्र के लिए बलिदान का बकरा बनाया गया।

इन साधनों को अब परिवर्तित कर दिया गया है। अब इसमें इतनी असहिष्णुता नहीं, जितनी प्रारम्भ में थी। आजकल रूसी सरकार रचनात्मक कार्यक्रम में दत्तचित है और पंचवर्षीय योजनाओं के अनुसार दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति कर चुकी है। पिछले २० वर्षों में ही अशिक्षितता की समस्या को हल कर दिया गया है। निर्धनता को भी देश से लगभग निकाल दिया गया है। जातीय स्वास्थ्य के प्रश्न का वैज्ञानिक रीति से सुगम बनाकर जीवन आयु की आश्चर्यजनक वृद्धि कर ली गई है। साधारणतया रूस-राष्ट्र में नवजीवन का संचार कर दिया गया है।

उनके कल्याण में ही संसार का सच्चा कल्याण है। यदि कुछ धनियों के हितों की हानि होती है, तो उनकी चिन्ता न करनी चाहिए। निर्धनों की रक्षा करना प्रत्येक राष्ट्र का कर्तव्य है।

आर्थिक दृष्टि से

साम्यवाद अधिक हितकर है। निर्बाध प्रतियोगिता (Competition) के कारण व्यवसायों की प्रतिस्पर्धा बढ़ती है और परस्पर विनाश तक हो जाता है। ऐसी अवस्था में व्यवसायों में कार्य करने वाले मज़दूरों को बेकारी का सामना करना पड़ता है और देश में अशांति होती है। राष्ट्र व्यवसायों को अपने हाथ में रखकर आर्थिक अशांति को कम कर सकता है। जातीय साम्यवाद के अनुसार, जातीय हितों की रक्षा होती है और आर्थिक अवस्था उन्नत होती है।

धार्मिक दृष्टि से

मनुष्य जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए साम्यवाद ही सहायक हो सकता है। मनुष्य जीवन केवल धन कमाने के लिए नहीं मिला है। यदि रोटी पैदा करने की समस्या को हल करने में ही मनुष्य जीवन की इतिश्री है तो इसकी निरर्थकता स्वयं स्पष्ट है। ऐसा जीवन, तथा संघर्षहीन होने से इससे अच्छा जीवन, तो पशु भी व्यतीत करते हैं।

मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य सत्य का अन्वेषण करना है। इसी आध्यात्मिक-पिपासा को शान्ति करने में उसकी जीवन-यात्रा की सफलता है। यदि वह शान्त के स्रोत तक पहुँचने के लिए प्रयत्न नहीं करता और इस जीवन को तीर्थ-यात्रा न समझ कर केवल साधारण शरीर-यात्रा समझता है तो उसके मनुष्यत्व का कोई प्रयोजन नहीं। साम्यवाद संसार में निर्धनता को दूर करके, आर्थिक संघर्ष को मिटाकर प्रत्येक व्यक्ति

को आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने का अवसर देता है।

साम्यवाद के विरोधी इस बात पर भिन्न-भिन्न प्रकार के आक्षेप करते हैं

नैतिक दृष्टि से

साम्यवाद के स्थापित होने पर, राष्ट्र प्रत्येक व्यक्ति के भोजन तथा आराम का प्रबन्ध करेगा। उस अवस्था में वैयक्तिक शक्तियों का पूर्ण विकास न होगा और सब कोई राष्ट्र पर आश्रित होकर पराधीनता का जीवन व्यतीत करेगा। ऐसा जीवन दासता के जीवन से अच्छा न होगा। इससे व्यक्ति के आत्म-सम्मान की हानि होगी, और वह केवल राष्ट्र का उपकरण-मात्र बन जायगा।

आर्थिक दृष्टि से

साम्यवाद द्वारा संसार की उत्पत्ति पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा। बड़े-बड़े कारखाने व्यक्तियों के हाथ में न रहने से उनकी उत्पत्ति बहुत कम हो जायगी। राष्ट्र कभी भी उतनी योग्यता तथा

दो घण्टे, ईश्वर-प्रार्थना में समय नष्ट करने की अपेक्षा, कुर्सी बनाकर या अन्य श्रम का कार्य करके, धन उत्पन्न करना अधिक उपयोगी समझते हैं। साम्यवाद से जो आशाएं बँधी थीं, वे बिलकुल पूरी नहीं हुई हैं। साम्यवादी देशों में भूख तथा नंग के प्रश्न को अवश्य हल कर दिया गया है। परन्तु मनुष्य जीवन की उद्देश्य-पूर्ति का प्रश्न वहां भी हल नहीं हुआ है। वहाँ धनोत्पत्ति की तन्मयता ने आध्यात्मिक अन्वेषण की भावना को कुचल दिया है।

भारतवर्ष में प्राचीन ऋषि लोग धनोपार्जन की चिन्ता से मुक्त होकर, एकान्त वनों में समाधिस्थ होकर, संसार के अमर आध्यात्मिक तत्वों का अन्वेषण करते थे। उन्हें महान् सम्राटों के साम्राज्य की, सांसारिक वैभव तथा समृद्धि की तनिक भी अभिलाषा नहीं थी। उन्होंने राज्यों को ठुकराया था और उनको स्वीकार करना आध्यात्मिक मार्ग में बाधक समझा था। धन-सम्पन्न लोग निर्धनों के चरण छूते थे। वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता यदि ऐसे साम्यवाद की स्थापना नहीं कर सकती तो उसके साम्यवादी-सिद्धान्तों का खोखलापन अत्यन्त स्पष्ट है।

भारतवर्ष में इसी आध्यात्मिक साम्यवाद की आवश्यकता है न कि योरोप के साम्यवाद की, जहाँ अवस्थाएं सर्वथा भिन्न हैं। रूस के पद-चिह्नों पर चलकर निरर्थक श्रेणी-संघर्ष (Class Struggle) उत्पन्न करना, हड़तालें कराना, आर्थिक अशान्ति को पैदा करना आदि साधन इस देश के अनुकूल नहीं हो सकते।

का निजी मन्त्री मण्डल था। इसके अधिवेशन प्रायः गुप्त रूप में होते थे।

जर्मनी में भी एकसत्तावाद का उदय प्रथम महायुद्ध के बाद हुआ। इस युद्ध में जर्मनी पूरी तरह हार गया था। मित्रराष्ट्रों की तरफ से उसके साथ बहुत कठोर व्यवहार किये गए थे, जिसके कारण जर्मनी में पूर्ण अव्यवस्था फैल गई थी। उसकी आर्थिक अवस्था शोचनीयता की चरम सीमा तक पहुँच गई थी। चार वर्षों तक अपना सब-कुछ स्वाहा कर देने के बाद, जर्मनी को अपने बहुत-से देशों से हाथ धोना पड़ा था। उस पर क्षति-पूर्ति का असह्य बोझ भी था। वस्तुतः जर्मनी का दिवाला निकल गया था। उन दिनों जर्मनी में २० लाख आदमी बेकार थे।

इसी समय, नाज़ी पार्टी का जन्म हुआ। इसका अधिनायक एडोल्फ हिटलर बना। सन् १९२० से १९३२ तक यह दल हिटलर के नेतृत्व में अधिकाधिक शक्तिशाली बनता गया। अनेक महत्त्वपूर्ण और प्रतिभाशाली जर्मन नागरिक इस दल के सदस्य बन गए। जब यह दल सुसंगठित हो गया तो इसने भी मुसोलिनी की देखा-देखी बर्लिन पर धावा बोलने का इरादा किया। परन्तु म्युनिक से कुछ ही दूरी पर गोलियाँ चलाकर इस दल को तितर-बितर कर दिया गया।

परन्तु हिटलर ने नाज़ीपार्टी का पुनः संगठन करना प्रारम्भ किया। सन् १९२४ में ३२ नाज़ी रीश स्टेग में चुने गए। कुल मिलाकर १९ लाख वोट नाज़ियों को मिले। हिटलर ने सिद्ध कर दिया कि उसमें संगठन करने की असाधारण शक्ति है। सन् १९३० के निर्वाचन में ६५ लाख वोट नाज़ियों को मिले और १९७ नाज़ी रीशस्टेग में चुने गए।

जर्मन राष्ट्रपति हिन्डनबर्ग के विचार पुराने जमाने के थे। उसे कोई नई बात जँचती न थी। वह साम्यवाद और नाज़ीवाद दोनों का विरोधी था। परन्तु नाज़ियों के बढ़ते हुए ज़ोर के सामने उसे सिर झुकाना पड़ा और तत्कालीन प्रधान मन्त्री पेपन से त्यागपत्र लेकर, ३ जनवरी १९३३ के दिन उसे हिटलर को जर्मनी का प्रधान मन्त्री बनने के लिए निमन्त्रित करना पड़ा। प्रधानमंत्री बनकर हिटलर ने दो बातों को सबसे पूर्व अपना ध्येय बनाया। पहला तो यह कि जर्मनी में सम्पूर्ण राजनीतिक दलों की समाप्ति कर वहाँ नाज़ी दल का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करना और दूसरा यह कि जर्मनी की आर्थिक दशा को उन्नत करना। २३ मार्च १९३३ को रीशस्टेग के प्रस्तावानुसार हिटलर को जर्मनी का डिक्टेटर घोषित कर दिया गया। अगस्त १९३४ में राष्ट्रपति हिन्डनबर्ग की मृत्यु हो गई और तब हिटलर फ्यूहरर (महान् नेता) के नाम से जर्मन राष्ट्र का प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति और डिक्टेटर बन गया। जर्मन जनता के ९० प्रतिशत वोट हिटलर के पक्ष में थे। अब वह अपनी उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गया। इस तरह से जर्मनी में एकसत्तावाद की उत्पत्ति तथा स्थापना हुई।

२. एकसत्तावाद के सिद्धांत

यद्यपि गत महायुद्ध (१९३९—४५) में एकसत्तावाद की समाप्ति हो गई, तथापि इसके सिद्धान्त को समझना आवश्यक है। इटली में एकसत्तावाद का नाम फैसिज्म था, जर्मनी में इसका नाम नेशनल सोशलिज़्म था। दोनों देशों में डिक्टेटरों का राज्य था। वे ही राष्ट्र के अधिपति थे। दोनों देशों की पार्लमेंट नाम-मात्र में शासन-विधान बनाती थी। वास्तविक शासन-विधाता तो वहाँ का डिक्टेटर था। जनतन्त्र-प्रणाली की असफलता के बाद एकसत्तावाद की स्थापना

इन देशों में हुई। युद्ध के बाद, जातीय पुनर्निर्माण के लिए जनतन्त्र-प्रणाली को अपर्याप्त तथा कमज़ोर समझा गया। इन अवस्थाओं में एकसत्तावाद का जन्म हुआ।

एकसत्तावाद अथवा फैसिज़्म उस राजनीतिक विचार-धारा का नाम है, जिसमें—

(क) जातीय हित के सामने व्यक्ति के हित को तुच्छ समझा जाता है। व्यक्ति को जातीय गौरव का उपकरण-मात्र बनाया जाता है। जाति के लिए प्रत्येक नागरिक को अपना सर्वस्व देने के लिए बाधित किया जा सकता है।

(ख) जातीय हित के सामने संसार के हित को भी तुच्छ समझा जाता है। सारे संसार का अहित करके भी, अपने देश की भलाई के लिए सब उपायों द्वारा यत्न किया जाता है।

(ग) फैसिज्म का आधार एक सुसंगठित पार्टी होती है। यही पार्टी राष्ट्र के शासन का संचालन करती है। इसके सामने अन्य सब पार्टियों को तुच्छ समझा जाता है और उन्हें कुचल डालने का यत्न किया जाता है। पार्टी के उद्देश्यों को ही राष्ट्र का उद्देश्य निश्चित किया जाता है।

(घ) इस पार्टी का संगठन सैनिक बल पर आश्रित होता है। वास्तव में सेना-बल द्वारा ही राष्ट्र का शासन-व्यवस्था की जाती है। राष्ट्र के प्रत्येक विभाग में सैनिक नियन्त्रण तथा अनुशासन रखा जाता है और थोड़े नियम-भंग पर भी कठोर दण्ड दिया जाता है अपने राजनीतिक विरोधियों का नृशंस हनन तक कर दिया जाता है।

(ङ) फैसिज़्म साम्यवाद का शत्रु है। अपनी जाति के समान

यह किसी अन्य जाति को नहीं मानता। समानता का सिद्धांत ही सर्वथा इसके आदर्शों के प्रतिकूल है। समाज में असमानता को नैसर्गिक तथा माना जाता है।

(च) फैसिज़्म अन्तर्जातीयवाद का भी शत्रु है। उसे विश्व-शांति में विश्वास नहीं। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को न यह सम्भव समझता है और न ही वांछनीय। फैसिज़्म युद्धों की उपयोगिता को ढकोसला-मात्र समझता है।

(छ) फैसिज़्म नागरिक स्वतन्त्रता में भी विश्वास नहीं रखता। जनतन्त्र-प्रणाली में ही धर्म-स्वातन्त्र्य, विचार-स्वातन्त्र्य, भाषण-स्वातन्त्र्य आदि का स्थान है; परन्तु एकतन्त्रप्रणाली में जनता को ये अधिकार नहीं दिये जा सकते। डिक्टेटर के विरुद्ध आवाज उठाना या उसके शासन की आलोचना करना भी अपराध माना जाता है।

फैसिज़्म की स्थिरता का प्रमुख साधन उसका प्रचार है। हिटलर ने अपनी आत्म-कथा 'मेनकेम्फ' में प्रचार को ही राष्ट्र-निर्माण का मुख्य साधन माना। इसके लिए सभी सम्भव साधन काम में लाये गए। बच्चों को केवल फ़ैसिस्ट स्कूलों में पढ़ाया गया। उनकी सब पुस्तकें फ़ैसिस्टों द्वारा लिखी होती थीं।

शिक्षा के साथ-ही-साथ बच्चों से, सैनिक कवायद भी कराई जाती थी और उन्हें सिखाया जाता था कि वे फ़ैसिस्ट सिपाही बनें। इटेलियन यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों को शपथ खानी पड़ती थी—"मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं राज्य, उसके उत्तराधिकारियों तथा फ़ैसिस्टों के प्रति, हितचिन्तक रहूंगा और शासन-विधान तथा कानूनों की प्रतिष्ठा करूंगा। अध्यापक रह कर मैं अपने विद्यार्थियों को ऐसे परिश्रमी नागरिक बनाने का प्रयत्न करूंगा जो

अपनी पितृभूमि तथा फ़ैसिस्ट पार्टी के भक्त तथा उनके लिए उपयोगी होंगे। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं किसी ऐसे दल का सदस्य न बनूंगा, जिसका कार्यक्रम मेरी उपयुक्त प्रतिज्ञा में बाधक बन सकता हो।"

जर्मनी में इन्हीं साधनों का अनुकरण किया गया और नाज़ी पार्टी द्वारा समाचार-पत्र, रेडियो, स्कूल, यूनिवर्सिटी आदि पर कठोर नियंत्रण रखा गया। केवल नेशनल सोशलिज़्म अथवा नाज़ीवाद के विचारों के प्रचार के लिए उनका उपयोग किया है। फैसिज़्म क्या नहीं है—यही बताना शायद मुसोलिनी को अधिक आसान जान पड़ा। तभी उसने फैसिज्म के सिद्धान्त की विवेचना करते हुए लिखा है:—

"फैसिज़्म अन्तर्राष्ट्रीय नहीं है, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय भाव फैसिज़्म का आंतरिक अंग नहीं है। यह साम्यवाद नहीं है, क्योंकि यह मार्क्सिज्म का विरोधी है, यह विभिन्न श्रेणियों के हितों के आधारभूत भेद को स्वीकार करता है। यह प्रजातन्त्र भी नहीं है, क्योंकि यह इस सिद्धान्त पर विश्वास नहीं करता कि समाज के सदस्य, सदस्यत्व के नाते समाज पर शासन के योग्य भी हो जाते हैं। और यह शान्तिवाद (Pacifism) भी नहीं है, क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को सम्भव नहीं समझता।"

३ एकसत्तावाद के प्रकार

डिक्टेटरशिप का जन्म इटली में हुआ। परन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद कई देशों ने इसे अपना लिया था। सन् १६३६ तक जर्मनी, इटली, जापान, स्पेन, हंगरी, मोरोक्को—देशों में एक-

एकसत्तावाद का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। सन् १६३७ में इन एकसत्तावादी देशों में एन्टी कोमिएटरन नामक एक पैक्ट हुआ था, जो १६३६ में कई अन्य देशों के सम्मिलित होने के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। विशेषतया जर्मनी, इटली, जापान—इन एक-सत्तावादी देशों को एक्सिस पावर्स कहा जाने लगा। इन सबका समान उद्देश्य जन-तन्त्र-प्रणाली तथा साम्यवाद का विरोध करना था।

परन्तु देश की परिस्थिति के अनुसार एकसत्तावाद के स्वरूप में कुछ कुछ भिन्नता आ गई। मुख्यतया इसके दो रूप बन गए:—

फैसिज्म

जो इटली में प्रसिद्ध हुआ उसके प्रचार तथा विस्तार का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। मुसोलिनी इसका जन्मदाता था। इसके मुख्य दो उद्देश्य—रूस के साम्यवाद का तीव्र विरोध करना तथा इंग्लैण्ड की जनतन्त्र प्रणाली का विरोध करना था। मुसोलिनी के अपने शब्दों में फ़ैसिज्स का ध्येय इस तरह प्रकट किया जा सकता है:—"मेरा राष्ट्र में पूर्ण विश्वास है। इसके बिना, मैं पूर्ण मनुष्यत्व को प्राप्त नहीं कर सकता। मेरा विश्वास है कि इटली का पवित्र भाग्य, एक दिन सम्पूर्ण विश्व पर सबसे महान् आध्यात्मिक प्रभाव डालेगा। मैं अपने नायक की आज्ञा का पालन करूँगा, क्योंकि आज्ञा-पालन के बिना समाज स्वस्थ नहीं बन सकता।"

नेशनल सोशलिज्म

यह एकसत्तावाद का जर्मनी में नाम था। इसमें और फैसिज्म में कोई विशेष अन्तर नहीं, अन्तर केवल बल देने का था। नेशनल सोशलिज्म भी रूस के साम्यवाद तथा इंग्लैंड के जनतन्त्रवाद का प्रबल विरोधी था। परन्तु यह अपनी जाति की उत्कृष्टता पर बहुत

अधिक विश्वास रखता था। इसमें सेमिटिक जातियों, विशेषतया यहूदियों की नसल से बहुत तीव्र घृणा के भाव रखे गए। उन्हें देश से निकाला गया। उनकी सम्पत्ति को छीना गया। उन्हें राष्ट्र के पदों से पृथक् किया गया। उनके साथ क्रूरता तथा अत्याचार का व्यवहार किया गया। लगभग ४० लाख यहूदियों के साथ मनुष्यत्वहीन व्यवहार कर, उन्हें निराश्रय तथा निस्सहाय बना दिया गया। जर्मन से विजित देशों में भी, यहूदियों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया गया है।

४. एकसत्तावाद की समालोचना

प्रश्न तो सीधा है कि संसार के कल्याण के लिए एक व्यक्ति का शासन अच्छा है या बहुत व्यक्तियों का? यद्यपि एक व्यक्ति, असाधारण अवस्थाओं में राष्ट्र का हित सम्पादन कर सकता है, यदि वह वास्तव मे एक महान् अलौकिक व्यक्ति हो, तथापि साधारण अवस्थाओं में, सदैव जनता का स्वयं अपना शासन करना ही युक्तियुक्त तथा वांछनीय है। जन-तंत्र-प्रणाली में अनेकों दोष हो सकते हैं, परन्तु जनता को स्वाधीनता प्राप्त होने के कारण यही विधान संसार के व्यापक हित की दृष्टि से उपादेय है। इटली तथा जर्मनी में वैयक्तिक स्वाधीनता का सर्वथा नाश हो गया था। वहां स्वतन्त्रता पूर्वक कोई कार्य करना, स्वतन्त्रता से बोलना तथा स्वतन्त्रता से विचार करना भी अपराध था! प्रत्येक व्यक्ति के लिए, विचार, भाषण एवं कार्य पहले से ही उनके डिक्टेटर द्वारा नियत थे। उन्हीं को करना उनका कर्तव्य था उन्हीं का पालन करने के लिए वह सदा बाध्य था।

जनतन्त्र-प्रणाली में सब व्यक्तियों की समानता है। सबके

लिए समान कानून हैं, समान न्याय व न्यायालय है। बड़े-से-बड़ा तथा छोटे-से-छोटा व्यक्ति देश के शासन-विधान के सम्मुख समान अधिकार रखता है। यहाँ जन्म, धर्म, वर्ण, रंग अथवा सम्प्रदाय सम्बंधी कोई विवेक नहीं। किसी जाति व नस्ल का कोई व्यक्ति, नागरिकता के अधिकार रखने की अवस्था में, ऊंचे-से-ऊँचे पद पर नियुक्त किया जा सकता है। यहाँ यहूदियों के साथ अन्याय नहीं, राजनीतिक विरोधियों के प्रति असहिष्णुता नहीं, किसी धर्म विशेष से पक्षपात व विद्वेष नहीं।

व्यक्तित्व का पूर्ण विकास स्वतन्त्र वातावरण में ही हो सकता है। एकसत्तावादी देशों में ऐसे स्वतंत्र वातावरण को स्थान प्राप्त नहीं था। वहां, केवल एक व्यक्ति को स्वतंत्रता प्राप्त थी, जो अन्य सब व्यक्तियों के जीवन, सम्पत्ति तथा स्वत्व के साथ मनमानी क्रीड़ा कर सकता था और अपनी इच्छानुसार सब व्यक्तियों के सर्वस्व का अपहरण कर सकता था।

जिस विचार-धारा के अनुसार, अन्य सब जातियों को, अन्य सब राष्ट्रों को नीच तथा दासता के योग्य समझा जाय और केवल अपनी जाति व राष्ट्र को संसार की सर्वोत्कृष्ट रचना माना जाय, वह कहां तक विश्व के व्यापक कल्याण का सम्पादन कर सकती थी? उसके सम्मुख तो केवल एक जाति को शासन करने का तथा शेष समस्त जगत् को शासित होने का अधिकार था।

इसी विचार-धारा को पराजित करने के लिए जनतन्त्रवाद की विचार-धारा ने गत महायुद्ध में सम्मिलित रूप में फैसिस्ट राष्ट्रों की संगठित शक्ति से टक्कर ली और उसे समाप्त किया। हिटलर और मुसोलिनी इस युद्ध में मारे गए और उनके साथी उनके बाद भी नष्ट किये गए। परन्तु जनतन्त्रवाद ने भी संसार

के अधिकतम कल्याण के सम्पादन में अधिक सफलता प्राप्त नहीं की। एकसत्तावादी राष्ट्रों की तरह इसने भी देश-भक्ति के संकुचित विचारों द्वारा नागरिकों में परराष्ट्र के प्रति घृणा तथा द्वेष के भाव उत्पन्न करने में कसर नहीं रखी। अतएव महायुद्ध के समाप्त होने पर भी संसार में शांति न हुई। ऐसी अवस्था में दोनों वादों की अपूर्णता स्पष्ट है। अब तो संसार की उस महान् प्रगति को बलवान् बनाने की आवश्यकता है, जिसका प्रारम्भ मध्यकाल के अनेक दार्शनिकों ने तथा वर्तमान काल में अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने किया था। यह महान् प्रगति अन्तर्जातीयतावाद की है।

१२

अन्तर्जातीयतावाद

१. अन्तर्जातीयतावाद की उत्पत्ति

अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध से खिन्न मानव जाति के लिए आशा का कोई सूत्र अवश्य होना चाहिए। यदि इसी तरह संसार में परस्पर जातियों के कलह बने रहे, रक्त-पात निरवच्छिन्न रूप में होते रहे और संसार बारम्बार भीषण प्रलयकारी महासंग्रामों का अभिनय-क्षेत्र बना रहा, तो अवश्य ही शीघ्र सभ्यता का अन्त हो जायगा और मनुष्य उसमें नीचतम पशु समझा जायगा। मत्स्यन्याय के अनुसार बड़ी मछली छोटी मछली को हड़प कर जाती है। इसी तरह बलवान् राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों को निगल जाते हैं।

मत्स्यन्याय की अवस्था को समाप्त करने के लिए राष्ट्र-संस्था की उत्पत्ति हुई। नीतिकार चाणक्य के कथनानुसार मत्स्यन्याय

से पीड़ित हुई प्रजा ने स्वयं वैवस्वत मनु से प्रार्थना की कि वह उनका राजा बने और उनकी परस्पर विनाश से रक्षा करे। परस्पर विनाश से बचने के लिए ही उन्होंने शासन के सब अधिकार अपने राष्ट्रपति को दिये और स्वयं अधीनता तथा अनुशासन में रहना स्वीकार किया।

राष्ट्र-उत्पत्ति के पश्चात्, सबसे प्रथम नगर-राष्ट्रों की रचना हुई। परन्तु इन नगर-राष्ट्रों में पुनः मत्स्यन्याय प्रारम्भ हो गया और समर्थ राष्ट्र असमर्थ राष्ट्र पर हमला करके, उसके दबाने का प्रयत्न करने लगे। इस अवस्था से तंग आकर छोटे राष्ट्रों ने बड़े राष्ट्रों से प्रार्थना की और उन्हें महान् राष्ट्र बनाने के लिए प्रेरित किया। तब जातीय राष्ट्रों की रचना हुई। अब युद्धों की संख्या तो कम हो गई, परन्तु जातीय राष्ट्र भी परस्पर शांति-पूर्वक नहीं रह सके। पुनः इन महान् राष्ट्रों में मत्स्यन्याय की अवस्था प्रारम्भ हुई, जो अब भी विद्यमान है। आज महान् राष्ट्रों को हड़प करने के लिए महत्तर राष्ट्र चेष्टावान् हैं। जिस किसी देश में युद्ध की अधिक तैयारी हो जाती है, वह अन्य छोटे देशों को अपने अधीन करने का यत्न करता है।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय मत्स्यन्याय ही अन्तर्जातीयतावाद की उत्पत्ति का कारण है। प्रथम महायुद्ध में इसी से पीड़ित होकर एक राष्ट्रसंघ (League of Nations) की रचना की गई थी। यही अन्तर्जातीयतावाद संसार के अधिकतम कल्याण का सम्पादक हो सकता है। यदि नगर-राष्ट्रों से जातीय राष्ट्र की उत्पत्ति हो सकती है, तो कोई आश्चर्य नहीं कि जातीय राष्ट्रों में परस्पर अशांति तथा अव्यवस्था हो जाने पर एक अन्तर्जातीय सार्वभौम राष्ट्र (World State) की उत्पत्ति हो सके।

२. अन्तर्जातीयतावाद सिद्धान्त

अन्तर्जातीयतावाद केसिद्धान्त के अनुसार :—

(क) प्रत्येक जाति को, वर्तमान राष्ट्र में व्यक्ति की तरह, अपने हितों को तुच्छ समझना होगा और सार्वभौम राष्ट्र के सम्मुख सिर झुकाना पड़ेगा। इस महान् राष्ट्र में जाति इकाई होगी और भिन्न-भिन्न जातियों से राष्ट्रीय शरीर का निर्माण होगा।

(ख) प्रत्येक जाति को आन्तरिक प्रबन्ध में स्वतन्त्रता, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में सार्वभौम राष्ट्र के प्रति पराधीनता होगी। वर्तमान अमेरिका की भिन्न-भिन्न स्टेटों की तरह उन्हें व्यापक महान् कार्यों में केन्द्रीय शासन के अनुशासन में रहना होगा।

(ग) वर्तमान समस्त राष्ट्र सेना तथा सैनिक उपकरणों का सर्वथा बहिष्कार कर देंगे। किसी भी देश में कोई सैनिक बल न रह सकेगा। केवल आन्तरिक शान्ति स्थापित करने के लिए पुलिस रखने की आज्ञा होगी। सेना रखने का अधिकार केवल उसी सार्वभौम राष्ट्र को होगा, जो आवश्यकता पड़ने पर पारस्परिक कलहों को शांत करने के लिए उन्हें प्रयोग में ला सकेगा।

उस सार्वभौम राष्ट्र की एक अन्तर्जातीय शासन-व्यवस्था (International Law) होगी, जिसके सम्मुख प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को सिर झुकाना होगा। उस शासन-व्यवस्था की अवज्ञा करने पर यथोचित दण्ड भी दिया जा सकेगा। न्याय का निर्णय करने के लिए अन्तर्जातीय न्यायालय (International Court) होगा, जो उस महान् राष्ट्र के केन्द्र में स्थित होगा।

अन्तर्जातीयतावाद के अनुसार संसार के सब प्राणी एक देश के नागरिक होंगे। सबके नागरिकता के अधिकार समान होंगे।

यह महान् देश सारा विश्व होगा। इस देश का कोई भाग किसी दूसरे भाग को पराधीन बनाकर न रख सकेगा। साम्राज्यवाद (Imperialism) की आधुनिक घृणित भावना इस विश्वराष्ट्र में सम्भव न हो सकेगी। प्रत्येक अंग को समान रूप में विकसित होने का अवसर दिया जायगा। निर्बलों की सहायता की जायगी, उन्हें बलवान् का शिकार नहीं बनने दिया जायगा।

इस तरह अन्तर्जातीयतावाद जातीयता के संकीर्ण भावों को मिटाकर संसार में स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के भाव स्थापित करेगा। इसके अनुसार संसार युद्ध क्षेत्र न बनकर पारस्परिक सहयोग तथा शांति का धाम बनेगा। साम्राज्यवाद तथा एकसत्तावाद, दोनों का अन्त होगा। जनतन्त्रवाद को भी परिष्कृत करके उसके उदार स्वरूप का ही इसमें अनुसरण किया जायगा। यह अन्तर्जातीयतावाद विश्व का महान् कल्याण-साधक बनेगा।

२. राष्ट्र संघ (League of Nations)

प्रथम महा युद्ध (१९१४—१८) की समाप्ति पर, इस अंतर्जातीयतावाद का अस्पष्ट रूप राष्ट्रसंघ की रचना में प्रकट हुआ। अमेरिकन राष्ट्रपति विलसन के प्रयत्नों से इसकी स्थापना हुई। इसका उद्देश्य संसार में युद्धों को रोकना तथा पारस्परिक रक्षा (Collective Security) को स्थापित करना था। इसमें प्रविष्ट होने वाले राष्ट्रों ने प्रतिज्ञा की कि वे परस्पर कलह का प्रारम्भ तब तक न करेंगे, जब तक राष्ट्रसंघ में उस कलह का निर्णय न कर दिया जायगा। यदि निर्णय के बाद किसी राष्ट्र को दोषी समझा गया तो अन्य राष्ट्र आर्थिक बहिष्कार आदि द्वारा उसे उचित दण्ड देंगे।

राष्ट्रसंघ की साधारण सभा (Assembly) का अधिवेशन वर्ष में एक बार होता था। इस में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के तीन प्रतिनिधि उपस्थित होते थे। प्रत्येक राष्ट्र का वोट होता था। साधारण सभा अन्तर्जातीय विषयों पर विचार करती थी और अन्तर्जातीय सम्बन्धों को स्थिर रखने का प्रयत्न करती थी।

राष्ट्रसंघ की कार्यकारिणी सभा (Council) के अधिवेशन वर्ष में प्रायः तीन बार होते थे। इस कौंसिल में बड़े-बड़े राष्ट्र (इंग्लैंड आदि) तथा छोटे-छोटे राष्ट्र क्रमशः अपने प्रतिनिधि भेजते थे। यही कौंसिल पारस्परिक कलहों का निर्णय करती थी और दोषी राष्ट्रों को अन्य सदस्य राष्ट्र द्वारा दण्ड देने का प्रबन्ध करती थी।

राष्ट्रसंघ की तरफ से एक अन्तर्जातीय न्यायालय की भी स्थापना की गई जो हेग में स्थिर रूप से स्थित था। इस न्यायालय के सम्मुख सदस्य राष्ट्र अपने सीमा सम्बन्धी अथवा अन्य झगड़ों को ले जा सकते थे तथा न्याय करा सकते थे।

राष्ट्रसंघ को अपने उद्देश्यों की पूर्ति में बहुत कम सफलता हुई। इसका कारण स्पष्ट है। यह राष्ट्रसंघ केवल अन्तर्जातीय संगठन था। इसको विश्वराष्ट्र का रूप प्राप्त नहीं हुआ था। यह भिन्न-भिन्न जातियों की एक समिति-मात्र थी, जिसके निर्णय किसी सदस्य पर लागू नहीं हो सकते थे। न इसके पास पुलिस थी, न सेना। यह अपने निर्णयों का पालन कराने में भी असमर्थ थी। राष्ट्रसंघ के देखते-देखते, इटली ने एबीसीनिया पर, जापान ने चीन पर, जर्मनी ने योरोपियन राष्ट्रों पर निष्कारण आक्रमण किया, परन्तु यह कुछ भी न कर सका। इसने [illegible] अवस्था में इन [illegible] को चेतावनी-मात्र दी, जिसे अनसुनी करके द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ किया गया। अब राष्ट्रसंघ मर चुका है, अतः

इसकी रचना आदि का बहुत वर्णन करना निरर्थक है।

परन्तु जिन आदर्शों से इसकी स्थापना हुई, वे अब भी जीवित हैं। यदि राष्ट्र संघ को असफलता प्राप्त हुई, तो उसका कारण उन आदर्शों का ग़लत होना नहीं। इसका वास्तविक कारण मानवीय स्वभाव की क्षुद्रता, संकीर्णता तथा स्वार्थपरता है। जब तक जातियाँ अपने स्वार्थ का संसार के परमार्थ के लिए त्याग नहीं कर सकेंगी, तब तक अन्तर्जातीय आदर्शों की सफलता की आशा नहीं। राष्ट्रसंघ फिर भी जीवित जागृत अवस्था में हो सकता है, यदि संसार के सब राष्ट्र इसके सदस्य बन जायें और राष्ट्रसंघ के सम्मुख अपने वैयक्तिक हितों का बलिदान कर दें। वर्तमान संयुक्तराष्ट्रसंघ (U. N. O.) इसी दिशा में एक नया परीक्षण है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ U. N. O. (United Nations Organisation)

द्वितीय महायुद्ध के बाद वर्तमान संयुक्त राष्ट्रसंघ (U. N. O.) की स्थापना की गई। अमेरिका के सानफ्रांसिस्को नामक नगर में समस्त देशों का एक अधिवेशन बुलाया गया और उसमें लगभग ५५ देशों ने इस संयुक्त राष्ट्र-संघ में सम्मिलित होना स्वीकार किया।

इस संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना भी संसार में युद्धों को समाप्त करने तथा विश्व-शांति स्थापित करने के उद्देश्य से हुई। यह निश्चय किया गया कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र परस्पर के सब झगड़ों को शांतिपूर्वक अथवा संयुक्त राष्ट्रसंघ को मध्यस्थ बनाकर, निपटाने का प्रयत्न करे और यथासम्भव युद्ध के मार्ग का अवलम्बन न करे।

इस संयुक्त राष्ट्रसंघ का संगठन भी पिछले राष्ट्रसंघ के

अनुसार किया गया है-यद्यपि पिछले नामों को बदल दिया गया है। इस संघ का संगठन निम्न रूप से है:—

१. साधारण सभा (General Assembly)

यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रतिनिधि सभा है— इसमें सब सदस्य-राष्ट्र अपने अपने-अपने प्रतिनिधि भेजते हैं और वर्ष में कम-से-कम एक वार इसका अधिवेशन बुलाया जाता है, जो भिन्न-भिन्न स्थानों पर होता है। इसमें सब देशों के प्रतिनिधि शान्ति के उपायों पर विचार करते हैं और इस सम्बन्ध में नीति का निर्धारण करते हैं। इस सभा का प्रधान प्रतिवर्ष भिन्न-भिन्न देशों से निर्वाचित होता है। सात उपप्रधान भी निर्वाचित होते हैं, जो प्रधान की सहायता करते हैं।

२. रक्षा परिषद् (Security Council)

यह साधारण सभा की कार्यकारिणी परिषद् है। वर्ष भर, यह परिषद् सभा द्वारा निर्धारित नीति का संचालन करती है। यहां परस्पर मतभेद रखने वाले राष्ट्रों को युद्ध तक पहुंचने से रोकती और उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को कायम रखने के लिए प्रेरित करती है।

इस रक्षा परिषद् के कुल ११ सदस्य हैं- ५ स्थिर और ६ अस्थिर। पांच बड़े राष्ट्रों-जैसे रूस, अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस, चीन-के प्रतिनिधि इसके स्थिर सदस्य हैं। मध्यम श्रेणी के राष्ट्रों के तीन प्रतिनिधि दो वर्षों के लिए बारी-बारी से इसके सदस्य बनते हैं और छोटे राष्ट्रों के तीन प्रतिनिधि, एक-एक वर्ष के लिए सदस्य बनते हैं।

यह परिषद् संयुक्त राष्ट्र-संघ के स्थिर स्थान न्यूयार्क (लेक-सक्सेस) में अपने अधिवेशन करती है, और किसी समय [illegible]

बनती हुई युद्ध की समस्या को हल करने का प्रयत्न करती है। किसी विशेष समस्या को सुलझाने के लिए अपनी उपसमिति नियत करके, युद्ध के लिए उत्सुक राष्ट्रों में उसे भेजती है और उन्हें शान्ति के मार्ग का अनुकरण करने के लिए प्रेरित करती है।

३. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice)

पहले की तरह राष्ट्रों के झगड़ों को निपटाने के लिए इस अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को कायम रखा गया है। इसमें राष्ट्रों के झगड़े ले जाए जा सकते हैं और उनका शांति-पूर्वक फैसला किया जा सकता है। इस न्यायालय में युद्ध के अपराधियों को दण्ड दिया जाता है।

४. सचिवालय (Secretariat)

संयुक्त राष्ट्र संघ के दैनन्दिन कार्य को चलाने के लिए स्थायी सचिवालय की स्थापना की गई है।

इसमें भिन्न-भिन्न देशों से नियुक्त स्थायी कर्मचारी राष्ट्र-संघ का सारा काम चलाते हैं। इसका एक प्रधान-मन्त्री होता है, जिसकी अध्यक्षता में सारा कार्य चलता है।

उनके अतिरिक्त विश्व में सामाजिक तथा आर्थिक प्रश्नों को सुलझाने के लिए एक विशेष उपसमिति (Social and Economic Council) स्थापित की गई है। इसका कर्त्तव्य संसार के श्रम-जीवियों के आर्थिक हितों की रक्षा, संसार के सब देशों में खाद्य-पदार्थों की व्यवस्था करना आदि है। संसार के पिछड़े हुए देशों को उन्नत करने के लिए एवं अन्य उपसमिति (Trusteeship Council) है, जो उनको जन-सत्ता-प्रणाली की संस्थाओं से शनैः-शनैः परिचित कराती है और उन्हें उन्नत करने के साधनों का प्रयोग करती है।

विश्व के भिन्न-भिन्न देशों में शिक्षा, विज्ञान एवं संस्कृति को उन्नत करने के लिए एक अन्य उपसंघ (U. N. E. S. C. O.) की स्थापना की गई—जिससे प्रतिवर्ष, संसार के विचारक एकत्रित होते हैं और संयुक्त रूप में सब देशों की सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक उन्नति की चिंता करते हैं।

५. विश्व-राष्ट्र (World Federation)

वास्तव में आवश्यकता तो विश्व-राष्ट्र स्थापित करने की है। राष्ट्रसंघ की असफलता पर विचार करते हुए हम समझ सकते हैं कि क्यों एक ऐसे विश्व-राष्ट्र की आवश्यकता है, जिसमें सब राष्ट्र अपने पृथक् प्रभुत्व (Sovereignty) का त्याग करके महान् विश्वराष्ट्र में अपने व्यक्तित्व को अंतर्हित कर दें और संसार में शांति स्थापित करने के लिए निःशस्त्रीकरण द्वारा परस्पर सहयोग करें।

प्राचीन समय से ऐसे सार्वभौम राष्ट्र की स्थापना का विचार चला आ रहा है। यूनान में महान सिकन्दर ने तथा रोम में जूलियस सीज़र ने इस राष्ट्र के स्वप्नों को देखा और उन्होंने ऐसे साम्राज्य को कायम करने का प्रयत्न किया, जिसमें भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के स्थान पर एक महान् विश्व-व्यापी राज्य-शासन का संगठन किया जा सके। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस के नेपोलियन बोनापार्ट ने भी सार्वभौम राज्य को क्रियात्मक रूप देने का प्रयत्न किया। यह सब एकसत्तावाद की महत्वाकांक्षा का फलित परिणाम था। वास्तव में इसमें कल्याण की भावना अन्तर्हित न थी।

परन्तु आज तो जनतंत्र-प्रणालियों को सम्मिलित होकर एक

राष्ट्र की स्थापना करनी है। इसमें किसी एक व्यक्ति को अथवा एक राष्ट्र को समस्त विश्व का सार्वभौम सम्राट् नहीं बनना है। कोई डिक्टेटर भी ऐसे राष्ट्र की स्थापना का स्वप्न नहीं ले सकता। संसार की महान् सार्वजनिक शक्तियां इस साम्राज्य-लिप्सा का घोर विरोध करेंगी। अब तो केवल समस्त राष्ट्रों के परस्पर सहयोग देने का प्रश्न है। इसी में सबका एक समान कल्याण है। सब राष्ट्र स्थापित करने से जहाँ आंतरिक शान्ति तथा व्यवस्था का लाभ होगा, वहाँ निःशस्त्रीकरण के कारण उन्हें अत्यन्त धन-राशि प्राप्त होगी जो परस्पर युद्धों में न लगकर जातीय स्वास्थ्य, शिक्षा आदि महान् कार्यों पर व्यय की जा सकेगी।

जैसा हम ऊपर बता चुके हैं, ऐसे विश्वराष्ट्र की कल्पना नितांत असम्भव नहीं। डिक्टेटर लोग चाहे युद्ध को कितना ही जातीय उन्नति का साधन तथा मानवीय प्रकृति का उत्कृष्ट रूप बतलायं, तो भी ऐसी अवस्था का उत्पन्न होना सर्वथा स्वाभाविक है, जब परस्पर विनाश की क्रीड़ा से परिश्रान्त होने के बाद, सब देश विश्राम अथवा शांति की अभिलाषा से एक बार अन्तर्जातीय सहयोग द्वारा, एक ऐसे विश्व-व्यापी राष्ट्र का संगठन करेंगे, जिसमें एक परिवार के अनेक सदस्यों की तरह भिन्न-भिन्न राष्ट्र आपस में मित्रता तथा प्रेम के भावों से एक बड़े परिवार की रचना कर लेंगे।

इस विश्व-राष्ट्र की रचना के मार्ग में जातीय स्वात्माभिमान ही एक रुकावट है। प्रत्येक राष्ट्र अपने जातीय इतिहास जातीय नाम व संस्थाओं का एकदम परित्याग करके, किसी अन्य राष्ट्र में अपनी भलाई के लिए भी सम्मिलित नहीं होना चाहता। उदाहरणार्थ, इंग्लैंड अपनी संस्था पार्लमेंट को, जिसे बनाने में कई शताब्दियों तक उसे संघर्ष करना पड़ा, विश्व-राष्ट्र के उद्देश्य से

जल्दी से छोड़ नहीं सकता ।

६. अन्तर्जातीयतावाद की समालोचना—

मध्यकाल के बाद से योरोप में धर्म को राजनीति से पृथक् कर दिया गया है । धर्म वास्तव में वैयक्तिक वस्तु है और समाज में धर्म का हस्ताक्षेप होना अनुचित है । परन्तु वैयक्तिक धर्म पालन करने से ही सामाजिक धर्म का पालन हो सकता है ।

अन्तर्जातीय नियमों का पालन करने के लिए तो धर्म के आधार की अत्यन्त आवश्यकता है । यदि युद्ध में कोई देश अंतर्जातीय नियमों के विरुद्ध विषैली गैसों का प्रयोग करना शुरू कर दे, तो धर्म के सिवाय अन्य कोई शक्ति उसे वैसा करने से नहीं रोक सकती । ईश्वर से निर्भय होकर पाप करने वाले अत्याचारी युद्ध-नेता लोग धर्म-मर्यादा को छोड़कर किसी और बंधन को स्वीकार नहीं कर सकते । अतः राजनीति में धर्म का उचित स्थान बनाए रखना विश्व-शान्ति की स्थापना के लिए आवश्यक है ।

विश्व-शांति अपने में एक धार्मिक समस्या है । केवल आर्थिक समझौतों तथा अंतर्जातीय शांति-परिषदों द्वारा इसकी स्थापना नहीं हो सकती । जर्मनी और रूस में परस्पर युद्ध न करने का पैक्ट (Non-aggression Pact) तब तक स्थिर रहा, जब तक दोनों देशों के राष्ट्रनायकों में धर्मभावना जागृत रही । इसके मिट जाने पर दोनों में युद्ध छिड़ गया । परंतु वास्तविक पूर्ण शांति का भाव तो तभी उत्पन्न हो सकता है, जब संसार के सब प्राणी एक दूसरे को परमात्मा की सन्तान समझें, आपस में भाई-भाई का व्यवहार करें और एक सम्मिलित परिवार की रचना करें । बन्धुत्व (Fraternity) भावना का विचार सभी धर्मों में प्रतिपादित है । सभी धर्म इसका प्रचार करते हैं । हिन्दू, मुसल-

मान, हिंदू, इस सिद्धांत में विश्वास करते हैं, परन्तु राजनीति में इस धार्मिक भावना का तिरस्कार कर दिया जाता है। वास्तव में राजनीतिक क्षेत्र में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सारांशतः अन्तर्जातीयता के लिए धर्म की अत्यन्त आवश्यकता है।

फ्रांसीसी राज्य-क्रांति के बाद स्वतंत्रता (Liberty) और समानता (Equality) की पुकार के साथ भ्रातृत्व (Fraternity) की पुकार भी उठाई गई। पहली पुकार ने भिन्न-भिन्न देशों में जनतंत्र-प्रणाली की स्थापना की। दूसरी पुकार ने साम्यवाद का क्रियात्मक रूप धारण किया। परन्तु तीसरी पुकार अनसुनी ही रह गई है। आज भी इसे सुनने में संकोच किया जा रहा है। परन्तु यही पुकार विश्व-शांति का आधार है। अंतर्जातीयतावाद इसी पर स्थापित है। भ्रातृत्व की धर्मभावना उत्पन्न होने के बाद संसार में अन्तर्जातीयता का कठिन प्रश्न हल हो सकता है।

प्रत्येक देश को कुछ त्याग के बाद ही अभिलषित वस्तु प्राप्त हो सकती है। इसके लिए अपने हितों का बलिदान करके विश्व के हित का सम्पादन करना होगा। यही नागरिकता की चरम-सीमा है। यही धर्म की अन्तिम सीढ़ी है। ईश्वर-पूजा इसी का नाम है। परमार्थ-सिद्धि इसी में है। हम ऐसी भावना के बिना अपने ध्येय की प्राप्ति में सफल नहीं हो सकते।

डिक्टेटरशिप की कठोर पराधीनता को जानते हुए भी जर्मनी, इटली, जापान आदि सभ्य देशों के सुशिक्षित व्यक्ति इसे अपने-अपने देश के कल्याण का एक-मात्र साधन मानने लगे थे। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इसी तरह समय-चक्र के साथ अन्तर्जातीयता की प्रगति अत्यंत प्रबल हो जाय और यह वर्तमान साम्यवाद तथा जनतंत्रवाद का स्थान ग्रहण कर ले।

विश्व के नागरिक

प्रत्येक राष्ट्र में कुछ महान् आत्माएं ऐसी होती हैं, जो जातीय संकीर्णता से ऊपर उठकर विश्व-कल्याण की साधना में सतत प्रयत्न करती हैं। वे जातीयता से घृणा नहीं करतीं, परन्तु जातीयता की हिंसात्मक प्रवृत्तियों से घृणा करती हैं। उनके लिए अपना देश निस्संदेह अत्यन्त प्रिय होता है, परंतु अन्य देश भी अप्रिय नहीं होते। वे अपने देश-हित का पहले सम्पादन करती हैं—परन्तु अन्य देशों के हित का भी समान रूप में चिंतन करती हैं। ऐसी आत्माओं को विश्व के नागरिक कह सकते हैं।

उनका राष्ट्र समस्त संसार है। अपनी जन्मभूमि के अतिरिक्त विश्व-कल्याण का चिंतन करना उनके जीवन का ध्येय है। अहिंसा-सिद्धांत द्वारा वे अंतर्राष्ट्रीयता के विचारों को जागृत रखती हैं और संसार की एक-मात्र आशा को नष्ट नहीं होने देतीं। संसार को ऐसे विश्व नागरिकों की आवश्यकता है जो एक बार इस पृथ्वी को आनन्द और सुख का धाम बना दें, जिसमें कलह का नाम न हो, विद्वेष का स्थान न हो, अपितु विश्व-शांति का सर्वत्र साम्राज्य हो।

परिशिष्ट

भारत का विभाजन और उससे उत्पन्न समस्याएं

भारत का विभाजन

द्वितीय महायुद्ध (१६३६-४५) में इंग्लैंड आदि प्रमुख राष्ट्रों ने घोषणा की थी कि इस युद्ध का उद्देश्य दासता से पीड़ित जातियों को मुक्त कराना है। भारतवर्ष ने इसी घोषणा के आधार पर इंग्लैंड से स्वतन्त्रता की मांग की। इस युद्ध को जीतने के लिए हमारे देश का बहुत-सा धन व्यय किया गया और लाखों की संख्या में भारतीय सैनिकों की भी आहुति दी गई।

युद्ध की समाप्ति पर जब स्वतन्त्रता की मांग को फिर दुहराया गया, तो तत्कालीन चर्चिल-पार्टी ने इस मांग को पूरा करने में संकोच प्रकट किया। तब भारत में विद्रोह की अग्नि प्रदीप्त होगई। महात्मा गान्धी जी की अध्यक्षता में स्वतन्त्रता-संग्राम बड़ी तीव्रता से प्रारम्भ हुआ और "भारत छोड़ दो' के आन्दोलन ने विराट् स्वरूप धारण कर लिया। भारतीय सेनाओं में असन्तोष बढ़ गया और उन्होंने ने भी इंग्लैंड के लिए लड़ने से इन्कार कर दिया। सुदूर-पूर्व देशों में इसी असन्तोष का लाभ उठाते हुए, स्वनाम-धन्य श्री सुभाषचन्द्र बोस ने "आजाद-हिन्द-फौज़" का संगठन किया और 'स्वतन्त्र भारत' की घोषणा करके उसके लिए युद्ध प्रारम्भ किया।

इंग्लैंड में, नवीन-निर्वाचन में, सौभाग्यवश, चर्चिल-पार्टी की पराजय हुई, और देश की वागडोर मज़दूरदल के हाथ में आई। इस दल ने, भारत में वढ़ते हुए विद्रोह को भांप कर, इस नीति को घोषित किया कि वह शीघ्र ही भारत को पूर्णतया स्वतन्त्र कर देगा। मार्च १६४७ में, प्रधान मन्त्री मिस्टर एटली ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि-"भारत को स्वतन्त्र करना प्रत्येक दल की नीति का उद्देश्य रहा है। तदनुसार, अब अधिक देर करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता और यह निश्चय कर लिया गया है कि १६४८ के जून मास तक ब्रिटिश राज्य अपने को, भारतवर्ष से सर्वथा पृथक् कर लेगा और तत्कालीन मुख्य राजनीतिक शक्तियों को यह राज्य सुपुर्द कर दिया जायगा।"

इस नीति को पूर्ण करने के लिए लार्ड मौन्टबेटन को भारत का अन्तिम वायसराय तथा गवर्नर जनरल नियत करके भेजा गया।
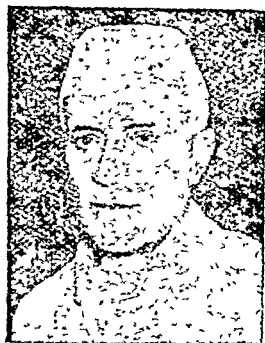
पं० नेहरू
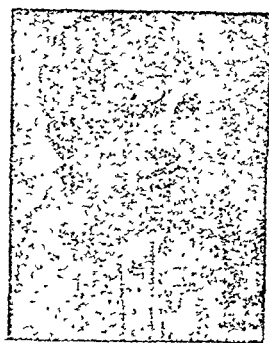
सरदार पटेल

लार्ड मौन्टबेटन ने भारत में पहुँचते ही देश के प्रमुख नेताओं-महात्मा गान्धी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल,

मि० जिन्ना आदि-से भेंट की और अपनी तीव्र बुद्धि द्वारा निश्चय किया कि भारत के विभाजन में ही सबका कल्याण है और ऐसा ही परामर्श उन्होंने सब नेताओं को दिया।

उस समय, हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर वैमनस्य बहुत बढ़ चुका था और प्रायः गृह-युद्ध का भीषण रूप धारण कर चुका था। मुस्लिम लीग की घृणा-प्रसारक नीति के कारण, कलकत्ता, नोआखाली, विहार, रावलपिण्डी, जेहलम, मुलतान आदि में राक्षसीय हत्याकाण्ड हो चुके थे और दोनों जातियों का परस्पर मिल कर रहना असम्भव-सा प्रतीत हो रहा था। लार्ड मौण्टबेटन ने कांग्रस और मुस्लिमलीग के नेताओं को, इसीलिए, देश के विभाजन स्वीकार करने, तथा दो स्वतन्त्र राष्ट्र स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। दोनों दलों ने उस परामर्श को स्वीकार किया और तदनुसार लार्ड मौण्टनबेटन की प्रेरणा पर ही ब्रिटिश-पार्लियामेंट ने जुलाई मास में ही अत्यन्त शीघ्रता से भारत-स्वतन्त्रता-एक्ट (Indian Independence Act, 1947) पास किया, जिसके द्वारा, भारतवर्ष तथा पाकिस्तान नाम के, दो स्वतन्त्र राष्ट्रों की स्थापना की गई और उन्हें अपनी-अपनी संविधान सभा (Constituent Assembly) द्वारा अपना संविधान तैयार करने का अवसर दिया गया। उन्हें यह भी स्वतन्त्रता दी गई कि वे चाहें ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर अथवा बाहर, जैसा भी उचित समझें, रहने की व्यवस्था करें।

उपर्युक्त एक्ट के अनुसार ही सीमाप्रान्त, पश्चिमीपंजाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान तथा पूर्वी बंगाल को भारत से पृथक् करके पाकिस्तान का निर्माण किया गया। यह विभाजन का सिद्धान्त देश के लिए कल्याणकर ही था, क्योंकि इससे, दोनों जातियों को अपनी सभ्यता

वा संस्कृति के अनुकूल, अपना विकास करने का अवसर प्राप्त हो गया और इससे हिन्दू मुस्लिम-वैमनस्य का सदियों से चला आता हुआ, विकट प्रश्न भी हल हो गया।

विभाजन से उत्पन्न समस्याएं

परन्तु विभाजन के सिद्धान्त को एकदम क्रियात्मक रूप दे देना महान् भूल थी। इसके भीषण परिणामों की तरफ किसी का भी
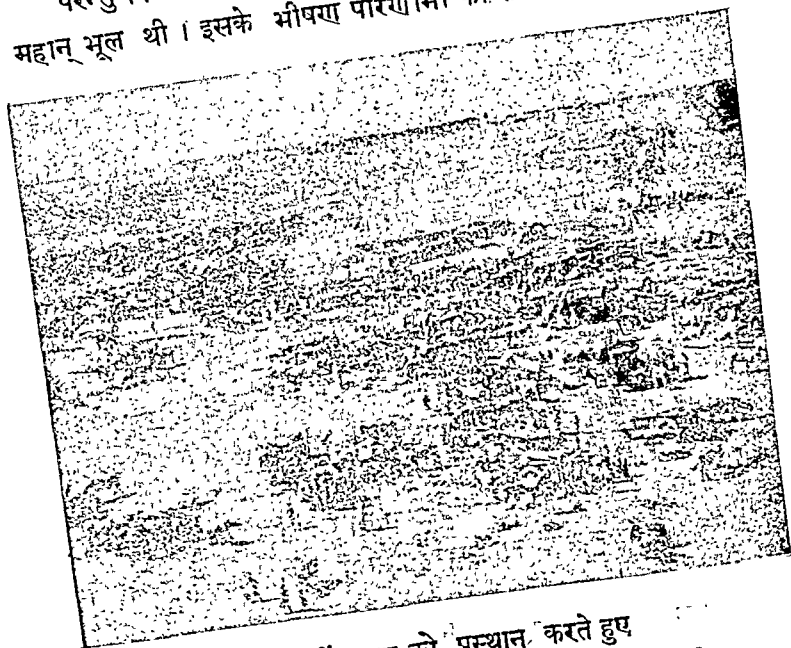
शरणार्थी भारत को प्रस्थान करते हुए

ध्यान नहीं गया। १५ अगस्त १९४७ को, एकदम देश के दो खण्ड कर दिये गए और शासन के अधिकारियों को, इधर-उधर, शीघ्रता से बदल दिया गया। पाकिस्तान में सब मुस्लिम अधिकारी नियत हो

गए और उन्होंने वहाँ के हिन्दुओं को पाकिस्तान छोड़ने के लिए विवश किया गया। लाखों की संख्या में स्त्रियाँ, बच्चे, युवक, वृद्ध

निस्सहाय शरणार्थी महिलाएं

अपने-अपने घर छोड़कर, भारतवर्ष की तरफ चले। लगभग ५ लाख व्यक्तियों को मार्ग में ही मार दिया गया-शेष-लगभग ५० लाख-व्यक्ति अवर्णनीय कष्टों को झेलते हुए शरणार्थी रूप में इस तरफ पहुँचे। हवाई जहाज, रेलगाड़ी, मोटर, ट्रक, बैलगाड़ी, पैदल—जैसा भी साधन जिसे प्राप्त हुआ, उससे वह इधर आया। उनको मार्ग में लूटा गया-उनके ज़ेवर, कपड़े, बर्तन तक छीन लिये गये। शेखूपुरा, वजीराबाद, जेहलम आदि अनेक स्थानों पर नव-युवती कन्याओं का अपहरण कर लिया गया। सहस्रों की संख्या

में स्त्रियों ने, अपने सतीत्व की रक्षा के लिए, कुओं में छलांग मारकर प्राणान्त किया। सैकड़ों सती हो गईं। अनेकों को उनके पतियों ने अपने हाथ से कृपाणों से मार दिया। जिन यातनाओं को झेलते हुए शरणार्थी लोग भारत की शरण में पहुँचे-उसका वास्तव में, लेखिनी द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। भारत में पहुँचने पर शरणार्थियों के भरण-पोषण का एकदम प्रबन्ध किया गया। स्थान-स्थान पर कैम्प खोल दिये गए। कुरुक्षेत्र में ही केवल, भारतीय सेना की अध्यक्षता में, लगभग तीन लाख शरणार्थियों को रहने के लिए स्थान, भोजन, कपड़े आदि देने का महान् आयोजन किया गया। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इन शरणार्थियों को भेज दिया गया और प्रांतीय सरकारों की तरफ से उनकी सेवा-शुश्रूषा की गई।

परन्तु इन ५० लाख शरणार्थियों को फिर से बसाने (Resettlement) का प्रश्न बहुत विकट था। पंजाब, सीमाप्रान्त तथा सिन्ध से आए हुए, हिन्दू प्रायः सम्पत्तिशाली थे। वे बड़े व्यापारी, व्यवसाय करने वाले, अथवा भूमिपति थे। मध्यम श्रेणी के लोग भी अच्छे खुशहाल थे। अपने-अपने जीविका के साधनों द्वारा उत्तमता से जीवन व्यतीत करते थे। अच्छे मकानों मे रहते थे—अच्छा खाते, पीते और पहनते थे। इधर भारत में आने पर उन्हें निराश्रय होकर रहना पड़ा—उन्हें मकान तक रहने को न मिले। यदि मुसलमानों के छोड़े हुए मकान मिले भी, तो वे रहने लायक न थे—क्योंकि मुसलमान प्रायः निर्धन श्रेणी के ही थे—जिनके मकान बहुत ही निम्न श्रेणी के थे। ज़मीनों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ। पश्चिमी पंजाब की ज़मीनें अत्यन्त उपजाऊ थीं—वहाँ नहरों का जाल बिछा होने के कारण खेती-बाड़ी बहुतायत से हो सकती

थी। परन्तु पूर्वी पंजाब में जमीनें पानी की प्यासी और प्राय: बरसात पर ही आश्रित रहने वाली थी। अत: इधर जमीनों का सहारा लेने वालों को भी भूखा ही मरना पड़ा।

फिर बसाने की योजनाएं

भारत-सरकार के लिए, वस्तुत:, इतनी महान् उखड़ी हुई मनुष्य संख्या का फिर से बसाने का प्रबन्ध करना एक अत्यन्त कठिन कार्य था। फिर भी इस दिशा में पूरा प्रयत्न किया गया। लगभग ३० करोड़ रुपया शरणार्थियों को बसाने की भिन्न-भिन्न योजनाओं पर भारत सरकार द्वारा, अब तक, व्यय किया जा चुका है

शरणार्थी जूता बना रहे हैं

और कितने ही करोड़ रुपया पूर्वी पंजाब तथा अन्य प्रान्तीय सरकारों द्वारा भी किया जा चुका है। कार्य इतना बड़ा है कि इस

पर जितना भी व्यय किया जाय, उतना ही थोड़ा है। सरकार की तरफ से अनेकों योजनाएं क्रिया में परिणत की जा चुकी हैं, जिनके द्वारा लाखों व्यक्तियों को ग्रामोद्योग का कार्य सिखाकर उन्हें ग्रामों में बसा दिया गया है। व्यापारियों को ऋण देकर उन्हें व्यापार के कामों में फिर लगा दिया गया है। बड़े-बड़े व्यवसाय पतियों को भी लाखों की सहायता देकर फिर से अपना-अपना व्यवसाय-प्रारम्भ करने के लिए उत्साहित किया गया है। हज़ारों की संख्या में मकान बनाकर शरणार्थियों को उनमें बसाने का प्रबन्ध किया
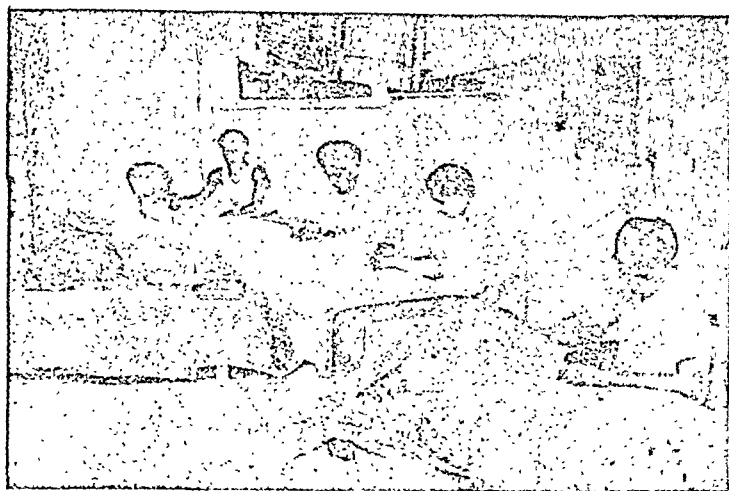
शरणार्थियों को दस्तकारी की शिक्षा दी जा रही है

गया है। लाखों नवयुवकों को अन्य उपयोगी कार्यों में लगा दिया गया है, जिससे वे देश के योग्य नागरिक बन सकें। परन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि अभी तक बहुत कर्तव्य शेष है। ५०००००० शरणार्थियों को देश की सम्पत्ति मानते हुए, उन्हें फिर से

सम्मानपूर्ण जीवन प्रदान करना हमारी गवर्मेण्ट का कर्तव्य है। जब तक एक-एक व्यक्ति फिर से अपनी पुरानी स्थिति को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक सरकार का कर्तव्य समाप्त नहीं होता। कार्य महान् है। परन्तु धैर्य तथा लगन से इसे अवश्य सम्पन्न किया जा सकता है। विशाल भारत में रहने वाले अन्य सुखी एवं भाग्यशाली नागरिकों के सहयोग से विभाजन से उठी हुई, इन समस्याओं को सरलता से हल किया जा सकता है।

विपत्ति के समय, नागरिकों का परस्पर सहानुभूति प्रकट करना तथा सहायता करना परमधर्म है। राष्ट्र के किसी अङ्ग के व्यथित होने पर, उसकी व्यथा को दूर करना शरीर के अन्य अङ्गों के अपने हित के लिए भी परम आवश्यक है। यदि इन ५० लाख उखड़े हुए भारत-निवासियों के रहने, खाने, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का उचित ध्यान नहीं किया गया तो वे निराश हो कर चोरी, डाका, भिखारीपन आदि अनुचित कार्यों की तरफ प्रवृत्त होजायंगे और उससे देश का महान् अहित ही होगा। जैसा भी हो, शीघ्रता से इन निस्सहाय, निराश्रित, निर्धन, व्यक्तियों के पुनः बसाने का पूरा प्रबन्ध राष्ट्र की तरफ से हो जाना चाहिए। इसी में समस्त भारत का कल्याण है। ऐसे ही संकट के समय में नागरिक-धर्म की परीक्षा होती है। भारतीय नागरिक इस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ही, अपनी नवीन-प्राप्त स्वतन्त्रता का परिचय दे सकते हैं।

विभाजन के राजनीतिक परिणाम

उपर्युक्त आर्थिक दुष्परिणामों के अतिरिक्त भारत के विभाजन के साथ, अनेक राजनीतिक दुष्परिणाम भी उत्पन्न हो गए हैं। पाकिस्तान बन जाने पर आशा की जाती थी, कि हिन्दू मुस्लिम-समस्या सर्वथा समाप्त हो जायगी और दोनों जातियों में परस्पर

प्रेम बढ़ जायगा और दोनों अपने अपने राष्ट्र में, पूर्ण विकास की तरफअग्रसर होंगी। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। पाकिस्तान, निष्कारण ही भारत को अपना शत्रु-राष्ट्र समझता है और उसके प्रत्येक कार्य पर सन्देह-दृष्टि से देखता है । उसे भारत का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में सम्मान-पूर्ण स्थान प्राप्त करना अखरता है। वह सहन नहीं कर सकता कि उसकी मित्रता किसी अन्य राष्ट्र से हो सके। इसके परिणामस्वरूप, भारत को अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाना आवश्यक हो गया है और पाकिस्तान से छूते हुए लगभग २६०० मील लम्बे सीमाप्रान्त की रक्षा के लिए उसे, विशाल सेना का प्रबन्ध करना पड़ा है। विभाजन के समय, भारत की सेना-शक्ति का दो-तिहाई भाग प्राप्त हुआ था । पदाति, जल सेना, वायुसेना, शस्त्र, अस्त्र, आर्डिनेन्स फैक्टरी आदि अपनी आबादी तथा क्षेत्रफल के अनुपात के अनुसार, पाकिस्तान से द्विगुण मात्रा में हमारे देश को मिले थे। इससे हमारी सेना का पाकिस्तान की सेना से अधिक बलशाली होना स्वाभाविक है। स्वतन्त्रता के बाद भी इस शक्ति को बढ़ाने का पर्याप्त प्रयत्न किया गया है। बजट का लगभग १६० करोड़ रुपया सेना-प्रबन्ध पर ही व्यय किया जाता है। अतः हमारे राष्ट्र के सैनिक बल पर तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

फर्वरी २८, १९४८ में अंग्रेज सैनिक अधिकारियों के भारत से सर्वथा विदा हो जाने पर, अब सेना का नियन्त्रण अपने ही भारतीय सेनानायक (केरियापा) के हाथ में है। अब भारतीय नवयुवकों को ही उत्तरदायित्व के ऊँचे-से-ऊँचे पदों पर अवस्थित किया जा रहा है और देशभक्ति की भावना से उन्हें ओत-प्रोत कर के, देश-रक्षा के महान् कार्य में नियुक्त किया जा रहा है।

प्रत्येक नागरिक को देश के लिए अपना जीवन तक बलिदान करने के लिए सदा उद्यत रहना चाहिए। स्वतन्त्रता से बढ़कर संसार में कोई प्रिय वस्तु नहीं हो सकती। उसकी रक्षा के लिए देश के नवयुवकों को स्वेच्छा पूर्वक राष्ट्र-सेना में भर्ती होना चाहिए और शत्रु को
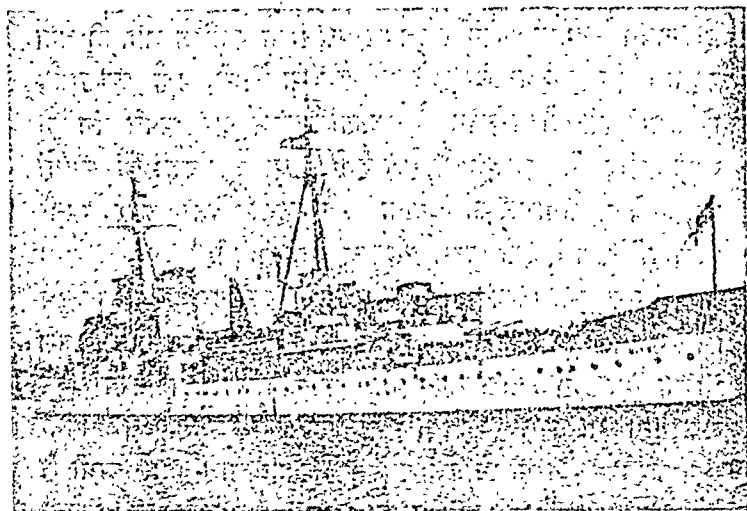
भारत को प्राप्त बड़ा जंगी जहाज

देश से दूर रखने के लिए युद्धों में सहर्ष भाग लेना चाहिए और अपने प्राणों तक की आहुति दे देने के लिए भय नहीं करना चाहिए। देश के लिए आहुत हुई आत्माएं अमर हो जाती हैं और उनका नाम इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है। भारतवर्ष तथा पाकिस्तान में काश्मीर के सम्बन्ध में कलह अभी तक जारी है। पाकिस्तान ने बलात्, भारत के इस सुन्दर भाग पर अक्तूबर १९४८ में आक्रमण कर दिया। हमारे देश के वीर सैनिकों ने एकदम

इस आक्रमण का तीव्र प्रतिरोध किया और आक्रान्ताओं को काश्मीर से बाहर निकाल दिया है। परन्तु युद्ध द्वारा इस कलह का निपटारा करना उचित न समझते हुए, हमारे प्रधानमन्त्री ने इसका निर्णय विश्वराष्ट्रसंघ (U. N. O.) के सुपुर्द कर दिया उसके द्वारा भेजे हुए तटस्थ व्यक्तियों के प्रयत्नों से, आशा है, यह झगड़ा समाप्त हो जायगा—और काश्मीर पूर्ववत् भारत का अभिन्न भाग ही बना रहेगा। युद्ध पुनः प्रारम्भ होने की अवस्था में भी, पूर्ण आशा है, कि हमारे देश की अविजेय सैनिक शक्ति कभी इस अपने अंग को राष्ट्र शरीर से पृथक् नहीं होने देगी। ऐसे देश-रक्षा के समयों पर, प्रत्येक नागरिक का अपना पूर्ण सहयोग देना और अपनी प्राणाहुति तक दे देना परम आवश्यक होता है।

संसार अभी विश्व-शान्ति के ध्येय से बहुत दूर है। न मालूम किस समय, तृतीय महान् युद्ध का ज्वालामुखी फट पड़े। उस भीषण स्थिति में प्रत्येक राष्ट्र की स्वतन्त्रता तथा अस्तित्व खतरे में होगा। भारत सदृश नवीन स्वतन्त्रता-प्राप्त राष्ट्र को तो अपनी रक्षा करना और भी अधिक कठिन हो जायगा। अतः अभी से हमें सावधान हो जाना चाहिए और प्रत्येक नागरिक को अपना कर्त्तव्य पहचानना चाहिए। जातीय पुनर्निर्माण का कार्य बड़ी शीघ्रता से सम्पूर्ण करना चाहिए और अपने राष्ट्र को अधिक-से-अधिक शक्तिशाली बनाकर आत्म-रक्षा का पूरा प्रबन्ध करना चाहिए। नागरिक-कर्त्तव्यों के पालन करने पर ही हम अपने राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं और तभी हम इसे गौरव युक्त उच्च स्थान पर ले जा सकते हैं।

उ त रा र्ध

भौतिक विज्ञान

१

विशाल विश्व में मनुष्य का अस्तित्व

संसार रहस्यपूर्ण विभूतियों तथा विचित्रताओं का घर है। इसकी प्रत्येक वस्तु बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक को भी आश्चर्य में डाल देती है। परन्तु इस अद्भुत कारखाने में यदि कोई पुर्जा सबसे अधिक विचित्र है तो वह मनुष्य है। मनुष्य को यदि संसार की किसी विचित्रता तथा विज्ञान की पराकाष्ठा का केन्द्र कहा जाय तो कोई अनुचित न होगा। मनुष्य एक प्राणी है, बाहर से देखने में बड़ा साधारण प्रतीत होता है। छोटा-सा सिर, संक्षिप्त-सा चेहरा, छोटे-छोटे हाथ और पांव। सार यह कि सारा शरीर ही सधारण-सा है शारीरिक डील-डौल मे हाथी आदि पशु इससे बड़े और बलवान् हैं। सौन्दर्य में कई पशु-पक्षी इसको मात करते हैं। देखने, सुनने, सूंघने तथा चलने में भी यह अन्य पशुओं की बराबरी नहीं कर सकता। पक्षी आकाश में उड़ते हैं, परन्तु यह उसमें असमर्थ है। जलजीव घण्टों जल में तैरते रहते हैं, परन्तु यह अपने को असहाय पाता है। इस दृष्टि से इतने महान् संसार में मनुष्य का अस्तित्व बड़ा साधारण सा प्रतीत होता है। परन्तु कितना अचम्भा है कि ५, ६-फुट का यह साधारण-सा प्राणी सब पर राज्य करता हुआ दिखाई देता है। रीछ, शेर तथा हाथी जैसे भयानक प्राणियों

को इशारों पर नचाता है। जल, थल तथा आकाश के पशुओं पर इसका अधिपत्य है । यदि भगवान् के बाद किसी को इस जगत् का राजा कहा जा सकता है तो वह मनुष्य ही है। समुद्र की गहरी लहरों, पृथ्वी के प्रत्येक भाग पर तथा पर्वतों के ऊँचे शिखरों पर इसने अपने अस्तित्व की ध्वजा स्थापित की है। अग्नि पर इसने अधिकार करके इससे लाभ उठाया है। जल इसकी मर्यादा में है। वायु पर इसका प्रभुत्व है। पशु इससे बल में, शरीर में, गति में तथा सौंदर्य में बड़े हैं। परन्तु इसके हाथ एक ऐसी दैवी सम्पत्ति है, जिससे उसकी महत्ता सबसे बढ़ जाती है। वह है बुद्धि का बल। यह वह सम्पत्ति है, जिसके द्वारा किये हुए कार्यों को देखकर कभी-कभी यह स्वयं भी हैरान हो जाता है। इसी बल के आधार पर शारीरिक अवस्था में संसार के अन्य पशु-पक्षियों की अपेक्षा छोटे होने पर वह प्रकृति के महान्-से-महान् एवं भीषण-से-भीषण प्राणी पर बड़ी सरलता से विजय प्राप्त कर लेता है। इसी शक्ति के द्वारा यह जल को स्थल तथा स्थल को जल में परिवर्तित कर देता। इसी बुद्धि के द्वारा ही यह आज अकाश में पक्षियों की भांति और इनसे भी अधिक ऊंचा उड़ने का आनन्द लेता है। इसी कारण प्रत्येक विद्वान् तथा विचारशील मनुष्य ने इसको सर्वश्रेष्ठ प्राणी का स्थान दिया है और इसे प्रकृति का राजा कहकर पुकारा है। मनुष्य की इस शक्ति का वर्णन ही अगले पृष्ठों में किया जायगा।

यदि गम्भीरता से इस महान् विश्व को देखा जाय तो पता लगेगा कि समुद्र के विस्तार के सामने जो मूल्य तथा अस्तित्व उसके तट पर पड़े हुए रेत के एक साधारण-से कण का है, ठीक वही दशा संसार-सागर के प्राकृतिक पदार्थों की भीषण तरंगों के सामने इस बालू-कण के समान मनुष्य की भी है। जिस पृथ्वी पर हम

रहते हैं उसकी परिधि ७९२० मील है और घेरा २४८४० मील। हमारी यह भूमि निरन्तर चक्कर की भांति गति करती रहती है। एक गति तो इसकी इसके अपने ध्रुव के इर्द-गिर्द है, जो प्रति घण्टा एक हज़ार मील के हिसाब से है। दूसरी गति सूर्य के इर्द-गिर्द पूरा चक्कर काटने में पृथ्वी को ३६५ दिन लगते हैं। इस सारे जगत् में जिसका हमारी पृथ्वी भी एक हिस्सा है, निम्नलिखित आठ ग्रह भी सूर्य के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि और चन्द्रमा इत्यादि।

जिस सूर्य से पृथ्वी को प्रकाश मिलता है वह पृथ्वी से ३,२२,००० गुना बड़ा है और ९,३०,००,००० मील की दूरी पर है, हमारा सूर्य २०० मील प्रति सैकण्ड की गति से अपनी परिधि पर घूमता है और इसे एक चक्कर पूरा करने में २५ करोड़ वर्ष लगते हैं। ऐसे सहस्रों और लाखों चक्कर सूर्य काट चुका है। सूर्य के प्रकाश की किरण १,८६,००० मील प्रति सेकंड की गति से चलती है और इसे भूमि पर पहुँचने में ८ मिनट लगते हैं।

जिस नीले आकाश के नीचे हम विश्राम करते हैं, आप उसमें टिमटमाते हुए दीपकों को बड़े आश्चर्य से देखते हैं। उनकी संख्या अगणित है। हम आँखों द्वारा दो हज़ार से अधिक को भी नहीं देख सकते, किन्तु वैज्ञानिक एक अरब पचास करोड़ का फोटो ले चुके हैं और ३० अरब तक की फोटो लेने की सम्भावना है। वर्तमान युग के वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इनकी संख्या इससे भी कहीं अधिक है। वह सब नक्षत्र तथा ग्रह सूर्य हैं, परन्तु हमारी पृथ्वी से इतनी दूरी पर हैं कि वह बहुत छोटे प्रतीत होते हैं। सबसे समीप का नक्षत्र प्राकसीमा सेन्टोरा है। यह पृथ्वी से २५ हज़ार अरब मील की दूरी पर है। इसकी प्रकाश किरण १,८६,००० मील

प्रति सैकंड चलती हुई इस नक्षत्र से हमारी पृथ्वी तक पहुँचने में चार वर्ष से अधिक समय लेती है। यह किरण एक सैकण्ड में हमारी पृथ्वी के गिर्द सात बार घूम जाती है। वैज्ञानिकों का कथन है कि कई एक नक्षत्र हमसे इतनी दूरी पर हैं कि उनके प्रकाश की किरण को ६ हज़ार अरब मील प्रति वर्ष की प्रगति से हमारी पृथ्वी पर पहुँचने में दस करोड़ वर्ष लग जाते है। यदि हम एक चित्र अपने सौर जगत् का खींचें, जो कि १५ हज़ार फीट लम्बा हो, तो हमारी पृथ्वी उस चित्र मे एक विन्दु का ही स्थान लेगी। और यदि सारे विश्व का चित्र बनाया जाय जिसका १५ वर्ग मील घेरा हो तो हमारे सौर जगत् का स्थान उसमें एक विन्दु से अधिक नहीं होगा। प्रकाश की एक किरण को इस संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचने तक ६ अरब वर्ष लगेंगे।

उपर्युक्त अंकों से स्पष्ट होता है कि यह विश्व अति विशाल तथा रहस्यमय है और इसके अन्दर मनुष्य का अस्तित्व एक अणु से बढ़कर नहीं।

२

विश्व की खोज में

मानव जीवन में एक स्वाभाविक प्रवृत्ति काम करती है। वह यह जानना चाहता है कि जहाँ वह रहता है, उसकी सीमा से परे क्या है। जिज्ञासा की यह भावना उसे शांति मे बैठने नहीं देती। इसी धुन में वह विस्तृत मैदानों में, पहाड़ों के दुर्गम शिखरों पर, गहरे समुद्र की तह में और घने वनों में दौड़ता फिरता है। परन्तु इस विस्तृत संसार में बिना साधनों के घूमना आसान बात नहीं। इसको अनुभव करते हुए मनुष्य ने अपनी यात्रा के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार

के साधन तैयार किये हैं। जिनकी सहायता से अब वह स्थल पर, जल पर और आकाश में सुगमता से घूम सकता है। वह साधन क्या हैं? इसका वर्णन इस अध्याय में किया जायगा।

१. स्थल यात्रा के साधन—

(क) **रेलगाड़ी**— स्थल यात्रा के लिए रेलगाड़ी प्रधान साधन है। रेलगाड़ी का इतिहास भी रहस्यपूर्ण है। रेलगाड़ी के आविष्कार के साथ सर्वसाधारण जनता में स्टीफनसन का नाम ही लिया जाता है। पर वस्तुतः सत्य यह है कि स्टीनफसन तो इस साधन का प्रचारक तथा सुधारक ही था। आविष्कार के प्रयत्न तो जारी थे। सब से पहले फ्रांस निवासी कुगनो Cugnot) ने एक ठेला बनाया। जो भाप से चलता था।
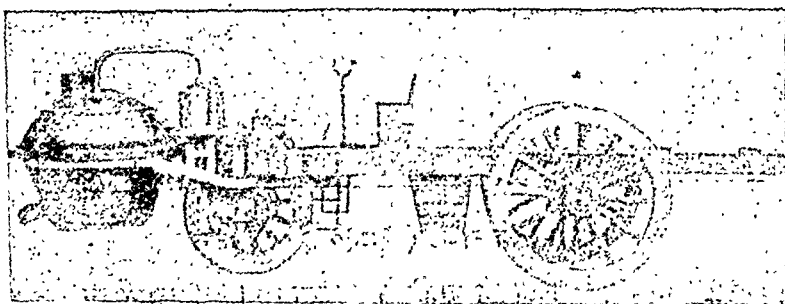
कुगनो का ठेला

यह ढाई मील प्रति घण्टा की प्रगति से चलता था। परन्तु इसमें यह दोष था कि यह निरन्तर १५ मिनट तक चलने के पश्चात् रुक जाता था। क्योंकि उसकी वाष्प का जोर इतने समय के पश्चात् कम हो जाता था। इस खोज के पश्चात् अमेरिका के

वैज्ञानिकों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। निदान पहला रेल रोड इंजन अमरीका निवासी मिस्टर रिचर्ड ने १८०२ सन् मे तैयार किया। यह ५ मील प्रति घण्टा की गति से चलता तथा कई गाड़ियों को खींचकर ले जाता था। धीरे-धीरे इंजनों में सुधार होने लगा और बाद में स्टीफनसन ने अपने विशेष प्रयोगों तथा परीक्षाओं के अनन्तर १८१४ में अपना इंजन बनाया। इसके बनाने में उसे दस महीने लगे। सन् १८१५ में दूसरा इंजन तैयार किया गया।
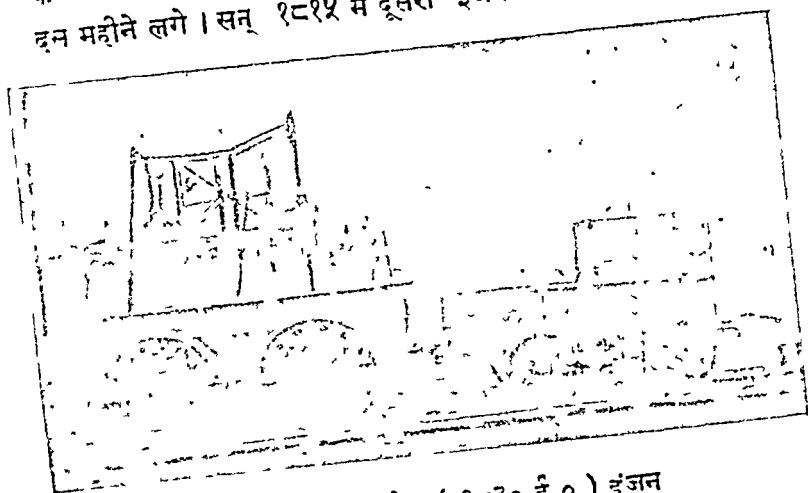
स्टीफनसन का राकेट (१८३० ई०) इंजन

यह १५ मील प्रति घण्टा की प्रगति से चलता था। उस समय का १५ मील प्रति घण्टा चलन बहुत तेज समझा जाता था। जब यह इंजन चलता तो भय होता कि कोई घटना न हो जाय। इसीलिए इंजन के आगे एक आदमी घोड़े पर सवार होकर और हाथ में लाल झण्डी लेकर चलता था। इस इंजन को देखकर घोड़े बहुत भय-भीत होते थे। अब धीरे-धीरे सुधार होने लगा। १८३० सन् में

स्टीफनसन ने राकेट नाम का प्रसिद्ध इंजन तैयार किया जो कि ३६ मील प्रति घण्टा की प्रगति से चल सकता था।

इसको देखकर दर्शक तथा सर्वसाधारण अत्यन्त चकित तथा प्रभावित हुए। तत्पश्चात् धीरे-धीरे इस आविष्कार का सुधार तथा प्रचार होने लगा।

दूसरे राष्ट्रों के साथ भारत में भी रेलगाड़ी आरम्भ हुई।
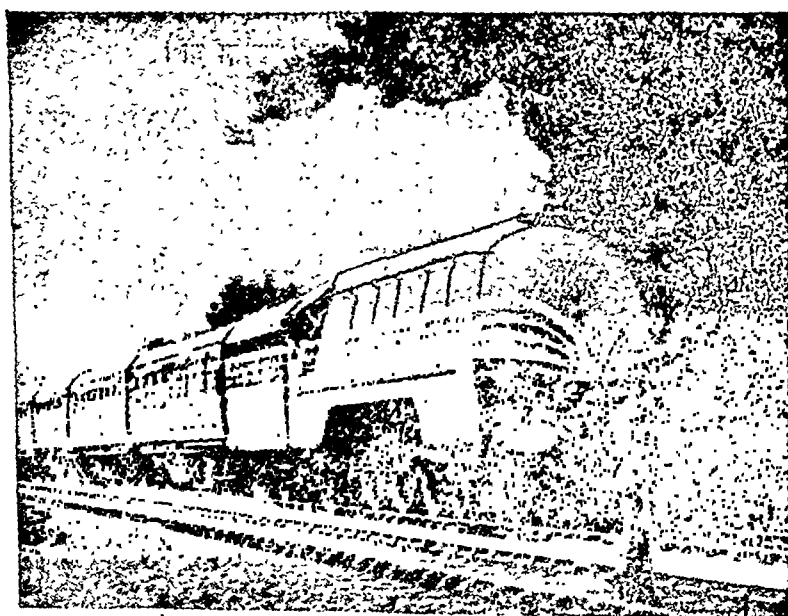
कोरोनेशन ट्रेन

सबसे पहले बम्बई से थाना तक, २२ मील लम्बी रेलवे लाइन बनाई गई। परन्तु आज तो भारतवर्ष में ३६ हजार मील लम्बी रेलवे

लाईन पर प्रतिदिन गाड़ियाँ दौड़ती हैं । इस युग का इंजन बहुत सुधरा हुआ तथा तेज़ चलता है । अच्छी गाड़ियाँ प्रायः ७०; ७५ प्रति घण्टा की गति से चलती हैं । ब्रिटिश साम्राज्य में 'कोरोनेशन ट्रेन' ७२ मील प्रति घण्टा की रफ्तार से चलती है । १२५ मील प्रति घण्टा की गति से चलने वाले इंजन भी बन गये हैं, जो कि विज्ञान की महान् विजय है । इतना ही नहीं, अपितु रफ्तार के साथ आराम भी बढ़ा है । कई गाड़ियाँ बिजली से चलती है । गाड़ी में चलते समय धुआँ, रेत, मिट्टी अन्दर आ जाती है, तथा गर्मी की ऋतु में अधिक गर्मी और शीत ऋतु में अधिक शीत का सामना करना पड़ता है । परन्तु अब गाड़ियों में कुछ ऐसे डिब्बे भी लगाये जाते हैं जिनको एयर कण्डीशण्ड (Air-Conditioned) डब्बे कहते हैं । उनमें बैठा हुआ यात्री न मई, जून की झुलसा देने वाले गरमी को अनुभव करता है, न जनवरी, फरवरी के ठिठराने वाली शीत को । ६० मील प्रति घण्टा की प्रगति से चलती हुई ये गाड़ियाँ तनिक हिलती हुई भी प्रतीत नहीं होतीं ।

(ग) **मोटर**—मोटर का इतिहास चार अवस्थाओं में से गुज़ारा है । (१) आविष्कार (२) परीक्षण (३) लोक-प्रचार (४) विश्व-व्यापकता । अब तो वैज्ञानिक इस बात पर विचार कर रहे हैं कि इसकी परिपूर्णता की अवस्था कब आयगी ।

मोटर के आविष्कार का श्रेय जर्मनी निवासी महाशय डैमलर को है । सन् १८८० में डैमलर और विलहन मेपक महाशय गैस फैक्ट्री में काम करते थे । कुछ काल के पश्चात् दोनों ने नौकरियां छोड़ दीं । उन्होंने १८८३ में बिना घोड़े के चलने वाला इञ्जन तयार करने का प्रयत्न किया । फिर १८८६ में पहली कार तयार की । जिसका नाम डैमलर कार पड़ा । यह १३ घोड़ों

की शक्ति वाली कार थी । धीरे-धीरे इसमें प्रगति हुई । १८८६ में दूसरी कार तैयार कर ली गई। ठीक उसी समय दूसरी ओर कार्नवैन्स नामक महाशय भी मोटर बनाने का परीक्षण कर रहे थे। उन्होंने १८८५ में तीन पहियों वाली मोटर बनाई। जिसमें ३ घोड़े की शक्ति का इञ्जन था।

पहली मोटर जो जनता के सामने पेश की गई वह ७½ मील की गति से चलती थी। इस रफ़्तार को भी उस समय बहुत समझा जाता था। १८६६ में एक एक्ट पास किया गया, कि इञ्जन से चलने वाला कोई यन्त्र ब्रिटिश सड़कों पर तीन मील प्रति घण्टा की गति से अधिक नहीं चल सकता। उसके आगे भी एक मनुष्य लाल झण्डा लेकर चले। इसके बाद १८६६ में लैंचस्टर की मोटर इंगलैंड में पैट्रोल से चलनी प्रारम्भ हुई। इस प्रकार १८६५ तक मोटर आविष्कार का पहला युग है।
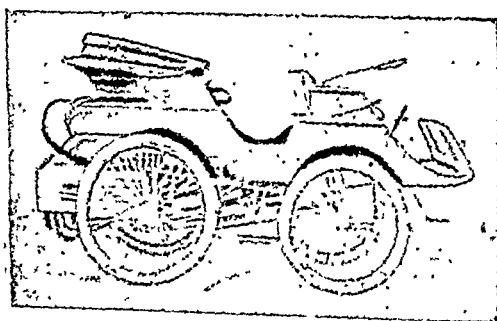
लैंचस्टर की मोटर (१८६६ ई०)

इसके पश्चात् १४ वर्ष आगे का समय परीक्षण का युग है। इसमें निरन्तर सुधार होते रहे। तत्पश्चात् यह लोक प्रचलित होने लगीं। सारे राष्ट्रों में उन्नति की दौड़ लगने लगी। कारखाने पर कारखाने

खुलने लग पड़े। अमरीका की फोर्ड कम्पनी सबसे प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इस समय संसार में चार करोड़ मोटरें हैं। अर्थात् प्रत्येक ५० मनुष्य के हिस्से में एक मोटर आती है। १९३९ में अमरीका में चार मनुष्यों के हिस्से में एक मोटर थी। फ्रांस में १९ के पीछे एक, ग्रेट ब्रिटेन में २१ व्यक्ति, तथा जर्मनी में ४९, व्यक्तियों के पीछे एक मोटर थी।

आजकल बड़ी तीव्र गति वाली मोटरें बनाई जा रही हैं। सन् १९३३ में केम्पबैल २७९ मील प्रति घण्टा की प्रगति से मोटर ले गया था। सन् १९३८ में ईस्टन (Eyston) ने थण्डरबोल्ट (Thunderbolt) नाम की मोटर तयार की। यह ३५७ मील प्रति घण्टा की रफ़तार से चलाई गई थी।
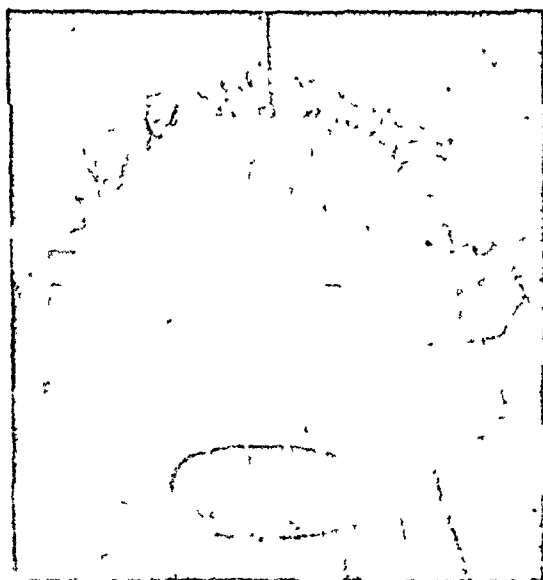
थण्डरबोल्ट मोटर जो ३५७ मील प्रति घण्टा की प्रगति से दौड़ी

मोटरों के कई प्रकार हैं, छोटी भी और बड़ी भी। कई दो तीन हज़ार मूल्य की और कई ५० हज़ार मूल्य की भी हैं। व्यापारियों की बड़ी-बड़ी मोटरों में तो खाने-पीने तथा सोने का भी प्रबन्ध होता है। मोटर के अगले भाग में इञ्जन होता है। एक टैंकी में पैट्रोल होता है जो नाली के द्वारा इञ्जन तक पहुँचता है। पैट्रोल में आग लगाने से गैस पैदा होती है। इसकी शक्ति से ही पहिये चलते हैं। ड्राईवर के हाथ में चक्र होता है। जिससे वह मोटर को निर्दिष्ट दिशा में ले जाता है। मोटर की चाल को घटाना-बढ़ाना ड्राईवर के बस की बात है। जब वह चाहता है तो पैट्रोल रोककर इञ्जन को बन्द कर देता, तथा ब्रेक लगाकर मोटर को रोक देता है। मोटरों के भीतर रेडियो सेट भी लगाया जा सकता है।

मोटर बड़ा उपयोगी यन्त्र है। परन्तु यह ख़तरे से ख़ाली नहीं। यदि मोटर चलाने में थोड़ी-सी असावधानी की जाय तो टक्कर होने की सम्भावना रहती है। अनुमान किया गया है कि मोटर के साथ टकराने से प्रति वर्ष सहस्रों प्राणियों का वध हो जाता है।

(ए) ट्रैम कार—कलकत्ता, बम्बई, तथा देहली जैसे बड़े-बड़े शहरों में लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने के लिए बड़े-बड़े बज़ारों में ट्राम का प्रबन्ध है। ये ट्राम कारें लोहे की पटरियों पर निश्चित भाग पर तथा निश्चित समय पर चलती हैं। और कई एक स्थानों पर तो ये बिजली द्वारा चलती हैं और कई स्थानों पर पैट्रोल द्वारा। दो चार पैसे में ही एक व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्रता से जा सकता है।

२. जल-यात्रा के साधन

हमारी पृथ्वी का एक भाग स्थल है और तीन भाग जल।

स्थल पर चलने तथा व्यापार आदि कार्य करने के लिए मनुष्य ने नाना प्रकार के स्थल यात्रा के उत्तम-उत्तम साधन तय्यार किये। परन्तु यह सब साधन तथा आविष्कार पृथ्वी तक ही समित हैं। जल-यात्रा के लिए इनका उपयोग नहीं हो सकता। विज्ञान ने जल जगत् पर विजय प्राप्त करने के लिए पग उठाया ताकि स्थल तथा जल दोनों पर आधिपत्य जमा सकें।

१८ वीं शताब्दी में भाप द्वारा चलने वाले जहाज़ों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। साथसाथ परीक्षाओं के पश्चात् जहाज़ों का अधिकाधिक प्रचार प्रारम्भ हुआ। १९ वीं शताब्दी को जहाज़ों का युग कहना चाहिए। सौ वर्ष पहले का जहाज़, रायल विलियम जिस का वज़न ८१७ टन था, लोगों की दृष्टि में बहुत बड़ा माना जाता था और सर्वसाधारण उसकी रफ़्तार से हैरान थे। परन्तु वह २० वीं शताब्दी में बनने वाले जहाज़ों के सामने कुछ भी नहीं।
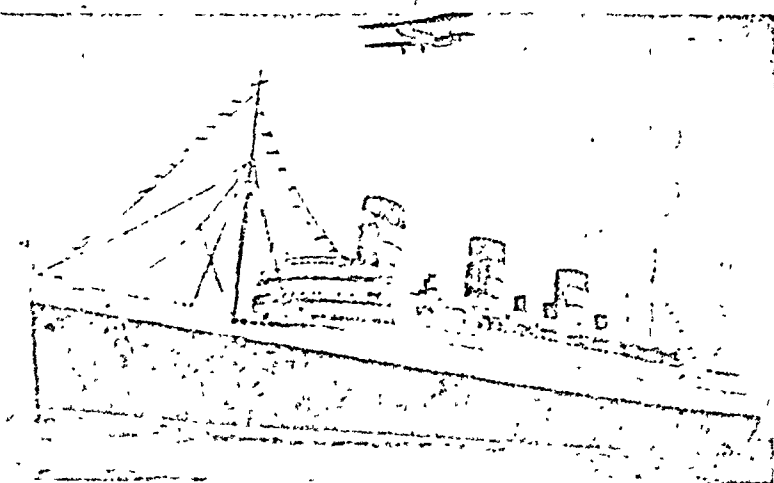
क्वीन मेरी नामक अंग्रेज़ी जहाज़

इङ्गलैण्ड में क्वीन मेरी नाम का जहाज़ बहुत बड़ा बनाया गया। इसका वज़न ८० हज़ार टन था। इसकी शक्ति २ लाख हॉर्स पावर थी। इसमें २ हज़ार यात्रियों के लिए प्रबन्ध था। एक हज़ार जहाज़ के चालक इनसे भिन्न थे। यह एक हज़ार तीन फुट लम्बा, ११८ फुट चौड़ा तथा २३४ फुट ऊँचा था।

इसके पश्चात् अंग्रेज़ों ने क्वीन एलिज़िबेथ नामक जहाज़ भी बनाया। यह एक हज़ार तीस फुट लम्बा और ८४ हज़ार टन वज़न का था। इसके पहिये सबसे बड़े थे। इसकी १८ छतें थीं। इसकी प्रगति प्रायः ३०, ३५ मील प्रति घण्टा के हिसाब से थी। इसके बाद १९३७ में मरीटैनीयां नामक नवीन जहाज बनाया गया। १० लाख मनुष्य इसके तय्यार करने पर लगे। इनमें से ५ हज़ार तो निरन्तर जहाज़ पर ही लगे हुए थे। शेष भिन्न-भिन्न शहरों में जहाज़ के पुर्ज़ों वाले कारखानों में काम करते थे। १४ महीनों में यह बनकर तय्यार हुआ। इस पर सहस्रों टन स्टील खर्च हुई। इसकी चादरों को जोड़ने के लिए २५ लाख, मेखें गाड़नी पड़ीं। यदि इन मेखों को लम्बाई में रखा जाए तो इनकी कतार एक सौ पचास मील तक चली जाएगी। इसका एक-एक पहिया ८५ टन का था। उसका घेरा ४६ फुट तथा व्यास में १५ फुट था। इसकी रफ़्तार ३५, ४० मील के लगभग थी। समुद्र यात्रा के समस्त भय तथा विपत्तियों से बचने के लिए इन जहाज़ों में सुरक्षा की नवीन वैज्ञानिक सामग्री जुटाई गई। जीवन के समस्त सांसारिक साधन वा आधुनिक सुविधाएं इनमें विद्यमान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये जहाज़ चलते-फिरते नगर हैं। इनमें वायरलैस, टैलीग्राफी, टैलीफोन, रेडियो तथा ग्रामोफोन का पूर्णतया प्रबन्ध है। नृत्यशाल, पुस्तकालय, बच्चों के लिए नर्सरी, सिनेमा हाल, फुलवारी तथा तथा खाना खाने का कमरा इत्यादि आमोद-प्रमोद की सारी नवीन

सामग्री उपस्थित होती है। यात्रियों के लिए तैरने के तालाब व्यायाम-गृह, टेनिस आदि के लिए क्रीड़ा-स्थान इत्यादि का भी समुचित प्रबन्ध है। इसके अतिरिक्त वहां डाक्टर, पुलिस, फोटोग्राफर, नर्स तथा शार्टहैण्ड की भी भली प्रकार व्यवस्था होती है। जहाजों पर समाचार-पत्र भी छपते हैं, जिनसे यात्रियों को संसार की नवनीतम खबरों का ज्ञान रहता है। प्रथम दर्जे के यात्रियों के लिए सोने का कमरा, बरामदा, निवास-गृह, सेवक का कमरा, सामान रखने का कमरा, स्नानगृह आदि नियत किया होता है। समुद्र की भावी घटनाओं से बचाव के लिए भी जहाज पर जीवनबोट-लाईफ बोट भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं। आग बुझाने तथा चोरों से बचाने का भी खास प्रबन्ध है। संक्षेप यह कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये आधुनिक जहाज बड़े सुव्यवस्थित तथा सुसज्जित महल की भान्ति समुद्र जल पर तैरते फिरते हैं।

३. आकाश-यात्रा के साधन

मनुष्य ने जब आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखा, तो उनमें भी आकाश-यात्रा की स्वाभाविक प्रवृत्ति पैदा हुई। यह प्रवृत्ति हवाई जहाजों के आविष्कार का कारण बनी। भारतवर्ष के प्राचीन रामायणादि धार्मिक ऐतिहासिक ग्रन्थों में पुष्पक विमान का बड़े रोचक एवं सुन्दर शब्दों में वर्णन आया है। लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजी लंका-विजय के पश्चात् पुष्पक विमान पर अयोध्या लौटे थे। उड़न खटोलों की कथाएं भी प्रसिद्ध हैं। जबतक वर्तमान हवाई जहाज नहीं बने थे, तब तक लोग इनको कपोल कल्पित गप्पें ही समझते थे। परन्तु अब प्रत्यक्ष होने से इनके तथ्य होने का निश्चय होने लगा है। सबसे पहले ओम सोहन (Clom Sohan) अपने शरीर पर पंख लगाकर उड़ा था।

गुब्बारों को आकाश में उड़ाने तथा उनके द्वारा उड़ने की प्रथा चिरकाल से जारी थी। लैण्डर्ड वैज्ञानिक ने सबसे पहले गुब्बारे के सहारे इंगलिश चैनल पार की। १८३६ में गुब्बारों का

क्लेम सोहन उड़ने से पूर्व

आविष्कार पूर्ण हो गया था। उस समय ११४ फुट तक लम्बा गुब्बारा तैयार किया गया। इन गुब्बारों में यह दोष था कि यह हवा के सहारे उड़ा करते थे। गुब्बारे में बैठने वालों को पता नहीं होता था कि हम कहाँ जाकर उतरेंगे। जिस ओर हवा ले गई, वहीं जाने में विवशता थी। गुब्बारे का चलना हवा पर

निर्भर था। इसलिए उड़ने वालों को स्वेच्छा से कहीं भी आने-जाने में सिद्धि न मिली।

उपर्युक्त त्रुटियों को दूर करने के लिए उनमें सुधार का कार्य प्रारम्भ हुआ। और जेप्लिन नामक एक जर्मन ने एक जहाज तैयार किया, जिसके नाम पर इसका नाम जेप्लिन प्रसिद्ध हुआ।

ग्राफ जेप्लिन नामक जहाज

सन् १८५२ में फ्रांस के इंजनीयर हेनरी गिफर्ड ने तीन अश्वबल का इंजन इन गुब्बारों में लगा दिया। वस्तुतः इसे ही पहला हवाई जहाज कहना चाहिए। कठिनाई यह थी कि भाप से चलने वाले इंजनों का वज़न स्वयं काफी होता था। जेप्लिन का ढाँचा इलमोनियम का बना और गुब्बारा रेशम का। इसमें १६ अश्वबल के दो इंजन लगाये गये। इसके गुब्बारे में हल्की हाइड्रोजन गैस भरी रहती है जिसके जोर से यह हवा में उड़ता है। इसकी गति पर नियन्त्रण रखने के लिए इंजन तथा यन्त्र लगे रहते हैं। सन् १९१८ में जर्मनी में ग्राफ जेप्लिन तैयार किया गया। इसकी लम्बाई ७७६ फीट और चौड़ाई ९८ फुट और गति ८० मील प्रति घण्टा थी। एक और 'हिण्डनबर्ग' नामक जहाज जर्मनी में बनाया गया। जो ८०३ फुट लम्बा और १३५ फुट चौड़ा था। इतना बड़ा जेप्लिन पहले कभी न बना था। इसमें बहुत-से कमरे और आराम के सब सामान थे। १९३७ में इसे आग लग

हिण्डनबर्ग नामक जहाज

और ३२ सैकण्ड में चूरचूर हो गया। ४० यात्रियों में से ११ मर गये। इस दुःखान्त घटना का परिणाम यह निकला कि लोगों ने इधर ध्यान देना छोड़ दिया।

गुब्बारे की त्रुटियाँ ज़ेप्लिन के आविष्कार से दूर हो गई परन्तु ज़ेप्लिन मे स्वयं भी कई त्रुटियाँ थीं। यद्यपि इससे मनमाने स्थान तथा भूमि पर जाया तथा उतरा जा सकता था, परन्तु इसकी रफ़्तार बहुत थोड़ी होती थी और दूसरे हाइड्रोजन गैस के कारण यह सुरक्षित नहीं था। वैज्ञानिक यह सोचने लगे कि कोई ऐसा जहाज़ तैयार किया जाय, जिसमे गैस की आवश्यकता न पड़े, मशीन से रफ़्तार भी तेज हो और फटने की भी आशंका न हो। इस प्रकार जेप्लिन के बाद हवाई जहाज़ बनाने की ओर लोगों ने विशेप ध्यान देना शुरू किया। सन् १९०२ में पहली उड़ान ओरविल राईट ने की थी। यह केवल १२ सैकिण्ड तक उड़ा था। १२० फुट ऊँचा गया। उसी दिन उसने तीन और भी उड़ानें कीं। उनमें अन्तिम उड़ान में ५९ सैकण्ड में ८५२ फुट सफर किया। मिस्टर ओरविल राईट सन् १८७१ में अमरीका में पैदा हुआ था। जब यह १७ वर्ष का था, तो चार पृष्ठ का साप्ताहिक पत्र निकालता था, जिसका वह स्वयं मुद्रक, प्रकाशक तथा सम्पादक था। उसने सहायता के लिए अपने बड़े भाई विलबर को अपने साथ ले लिया। दोनों मिलकर काम करते रहे। कुछ देर तक कोई विशेप
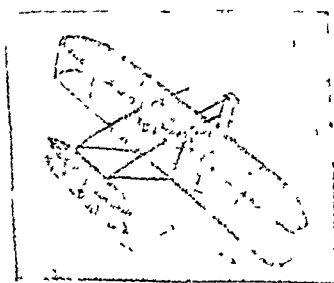
ओरविल राईट का जहाज़

लाभ न हुआ। जब साइकल चलने प्रारम्भ हुए तो उन्होंने यह काम बन्द कर दिया और 'राईट साईकल कम्पनी' नामक एक दूकान खोल ली। साथ-साथ गुप्त रूप से हवाई जहाज के परीक्षण भी करते रहे।

१९०२ में उन्होंने पहली उड़ान की और फिर दो वर्ष तक चुपचाप परीक्षण करते रहे। यहाँ तक कि पड़ोसियों को भी पता न लग सका। सन् १९०५ में उसने २४॥ मील उड़ान की। जहाज की रफ्तार ३८ मील प्रति घण्टा थी। प्रयत्न जारी रहा। सन् १९०८ में विलबर राईट अपना जहाज 'राईट फ्लायर' फ्रांस ले गया और वहाँ ७७॥ मील तक बिना रुकने के उड़ान की। उस समय लोगों को सन्देह था कि उन्होंने कोई चीज बनाई है।

वस्तुतः विलबर राईट पहला व्यक्ति नहीं था, जो उड़ा था। अपितु आल्बर्टो सैंटोडूमा नामक व्यक्ति १९०१ में २१॥ सैकण्ड में ७२० फुट उड़ा था। यह सन् १८८९ में पेरिस आया था ताकि बैलून और जहाजों के परीक्षण करे। उसने पहला जहाज १९०५ में बनाया। किन्तु सफल न हो सका। सन् १९०६ में इसका दूसरा प्रयत्न सफल हुआ। इसका चौथा हवाई जहाज इतना हल्का था कि वह मोटर साइकल से वजन में थोड़ा और मूल्य में कम था। १९०८ में वह इस जहाज में ८ मिनट तक उड़ता रहा। देखने
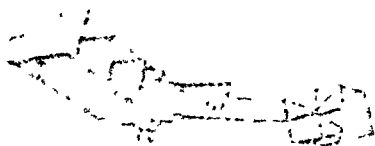
वाले आश्चर्य में थे कि इस जहाज का कुल वजन २५६ पौण्ड

था, यह इसके वज़न से टूट क्यों नहीं जाता । डूमा का अपना वज़न ११० पौंड था, उसे उठाने में जहाज़ समर्थ था । वह ६० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से इसमें उड़ता था । इस प्रकार अमेरिका और फ्रांस में जहाजों का काम पूरे प्रयत्न से जारी था । इसके बाद दूसरे राष्ट्रों ने आरम्भ कर दिया ।

जहाजों के निर्माण में जुट जाने पर धीरे-धीरे इनकी त्रुटियों को दूर करने के प्रयत्न किये जाने लगे और रफ्तार को तेज़ करने के विशेष साधनों पर बल दिया जाने लगा । अब जो जहाज तैयार हो रहे हैं, उनकी रफ्तार काफी तेज है तथा उनमें काफी मनुष्यों के बैठने का प्रबन्ध है । कुछ समय हुआ कि इंगलैंड में एक बड़ा भारी जहाज तैयार किया गया था, जिसका नाम आर १०१ था । वैज्ञानिकों ने दावा किया था कि आज तक ऐसा दृढ़ जहाज नहीं बनाया गया । उसमें आँधी, वर्षा, तथा और किसी भी विपत्ति का भय नहीं था । उसमें ६० विद्वान् बैठकर इंगलैंड से कनाडा होकर भारत आ रहे थे । यह जहाज उड़ता हुआ एक किला था । उसमें खाने-पीने तथा सोने के कमरे भी बने हुए थे, परन्तु वह मार्ग में ही टकरा कर समाप्त हो गया ।

मिस्टर होवर्ट हकस ने अपने लोक हीड (Lock Head) नामक जहाज में दुनिया के इर्द-गिर्द ३ दिन १९ घण्टे १७ मिनट में चक्कर लगाया । इसकी प्रगति १६३ मील प्रति घण्टा थी । इसमें ११ सौ अश्व बल (हार्स पावर) के दो इंजन थे । वह न्यूयार्क से पेरिस तक ३०४० मील की यात्रा को १६ घण्टे ११ मिनट में पूरा कर गया । उसके बाद वह और उसके चार साथी मास्को गये । वहाँ से फिर न्यूयार्क गये । इस प्रकार दुनिया के इर्द-गिर्द १४ हजार ८ सौ ७४ मील का चक्कर ३ दिन १९ घण्टे १७ मिनटों में लगाया ।

इस सफर में जहाज की रफ्तार १६३ मील प्रति घण्टा रही।

ऐसे जहाज़ भी बनाये गये हैं जिनमें बैठकर ५ हज़ार मील की यात्रा बिना कहीं ठहरे की जा सकती है। ऐसे ही सन् १९३१ में क्लाईड पैंगबार्न व ह्यूहारंडन (Hugh Harandon) ने मिस वीडो (Veedol) नामक जहाज़ पर टोकियो से लेकर वाशिंगटन तक ४४५८ मील की समुद्र यात्रा जहाज में ही की। आज कल जो अच्छे से अच्छे जहाज चल रहे हैं उनकी रफ्तार कम-से-कम २१३ मील प्रति घण्टा की है। परन्तु जो लड़ाई के विमान हैं वे आवश्यकता पड़ने पर ४५० मील प्रति घण्टा की प्रगति से चल सकते हैं।

२२ अगस्त १९४६ को एयर नामक चार उड़नों वाला जहाज इंगलैंड से हिन्दुस्तान २१ घण्टों में पहुंच गया। दोनों देशों में लगभग सात हज़ार मील का अन्तर है।

हो उसमें गम्भीर दृष्टि से देखो तो ज्ञात होगा कि उसमें असंख्य सूक्ष्म कीटाणु वास करते हैं। यह प्रतिक्षण श्वास के साथ हमारे शरीर में जाते हैं। जिस जल को आप पीते हैं, उसमें भी सूक्ष्म व अदृश्य कीटाणुओं की भरमार होती है। यही कीटाणु हमारे शरीर में जाकर नानाविध रोगों का कारण बनते हैं।

जिस नीले आकाश को हम रात के समय सहस्रों समुज्ज्वल ज्योतियों से जगमगाता हुआ देखते हैं, उसमें लाखों और करोड़ों ग्रह, उपग्रह और नक्षत्र हैं, जिन तक पहुँचना अभी तक हमारी शक्ति से परे है। जिस शरीर को तुमने धारण किया हुआ है, इसके अन्दर भी एक ऐसा विचित्र, विस्तृत तथा सुव्यवस्थित संसार निवास करता है, जिसके सम्बन्ध में सर्वसाधारण लोगों को बहुत कम ज्ञान है। मनुष्य अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा की भावना से प्रेरित होकर नाना प्रकार के साधनों को प्रयोग में लाने का अनवरत प्रयास करता है, जिससे वह इन सबको जान सके। इसी के लिए उसने कुछ प्रशंसनीय आविष्कार भी किये हैं, जिनका संक्षिप्त वृत्तांत नीचे दिया गया है।

१. दूरदर्शक

पिछले अध्याय में तुम पढ़ चुके हो, कि आकाश में असंख्य तारे हैं। पुराने काल के ज्योतिष विद्या के वेत्ता इनकी गति आदि के भेद को जानते थे। अपनी अमिट तीव्र इच्छा से उन्होंने आकाश की दूरतम गुफाओं को देखने के विविध प्रयत्न किये।

दूरदर्शक यन्त्र अथवा दूरबीन के आविष्कार का इतिहास भी बड़ा मनोरञ्जक है। सन् १५१५ में रोजर बेकन ने दूर से चीजों को शीशे में देखने का विचार पेश किया। लिपरसे तथा जैनसन ने सन् १६०८ में इसकी खोज तथा परीक्षण किये। परन्तु

इसका सारा श्रेय गेलिलियो को है। एक विचित्र घटना हुई। कथा इस प्रकार से है कि दो ऐनकों को एक दूसरी से कुछ दूरी पर रखकर सामने के गिरजाघर को देखा गया तो वह गिरजाघर बहुत समीप नजर आया। गैलिलियो उन दोनों वीनस में था। उसने वहां सुना कि कोई ऐसा यन्त्र निकला है जिससे दूर की चीजें दिखाई देती हैं। उसने वापस आकर अपना एक यन्त्र तैयार किया, जिसमें उसने शीशे की नाली की एक ओर उभरा हुआ शीशा तथा दूसरी ओर नतोदर शीशा रखा। उससे दूर की छोटी वस्तु भी बड़ी दिखाई देती थी। गैलिलियो ने वापिस वीनस जाकर अपना यह आविष्कार सुरक्षित करा लिया। दूरबीन के यन्त्र में दो प्रकार के शीशे होते है। एक ओब्जेक्ट ग्लास (Object glass) होता है जिसके द्वारा चीजें देखी जाती हैं। दूसरा आईलैंस (Eye Lens) जिसको आंखों के पास रखा जाता है। इससे छोटी वस्तु बड़ी प्रतीत होती है। इसे रिफ्लेक्टिंग टेलीस्कोप (Reflecting Telescope) कहते हैं। दूरबीन का एक और प्रकार भी है। उसमें चीजें सीधी नहीं देखी जातीं! अपितु पहले बड़े शीशे पर किरणें आकर पड़ती हैं। यह शीशा बीच में प्याली की भांति नतोदर शकल का होता है। फिर वहां से तिरछी होकर आँखें वाले लैंस पर पड़ती हैं। इसको रिफ्लेक्टिंग टैलिस्कोप (Reflecting Telescope) कहते हैं। गैलिलियो ने जो पहली दूरबीन बनाई उसमें चीज तीन तीन गुना बड़ी दिखाई देती थी दूसरी दूरवीन से चीज आठ गुना, तीसरी से ३३ गुना। परन्तु आधुनिक दूरवीन से चीजें १० हजार गुना बड़ी दिखाई देती हैं।

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है, दूरबीन दो प्रकार की हैं। पहली में चीज की छाया शीशे पर पड़ती है। दूसरे किनारे

पर एक छोटा-सा शीशा होता है, जिसे आंख का शीशा कहते हैं। इसी से देखा जाता है। यदि वस्तु बड़ी तथा चमकीली हो तो इसी के साथ देखना लाभदायक होता है। यदि चीज छोटी तथा मध्यम हो तो दूसरी के साथ देखा जाता है। दूसरी प्रकार में ओब्जेक्ट अर्थात् वस्तु देखने वाले शीशे के स्थान पर एक नतोदार शीशा होता है। चीज से रोशनी आकर उस पर पड़ती और वहां से फिर आंख वाले शीशे में जाती है। वहां से चीजें बड़ी दिखाई देती हैं। अब तक जो बड़े-से-बड़ा शीशा बना है उसका व्यास १०० इंच का है। सन् १९३७ में उनके द्वारा ऐसे ग्रह-उपग्रहों का चित्र लिया गया है जो ८० लाख प्रकाश वर्ष भूमि से दूर हैं।

पिछले १५० वर्षों में दूरवीन यन्त्र में काफी उन्नति हो चुकी है।

२. अणुवीक्षण यन्त्र

पिछले प्रकरण में दूर की वस्तुओं को देखने के लिए दूरवीन का वर्णन किया जा चुका है। कुछ चीजें ऐसी हैं जो हमारे समीप होने पर भी अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण उन्हें आंखों से नहीं देखा जा सकता। हमारे दैनिक प्रयोग आने वाले जल में नाना प्रकार के सूक्ष्म २ कीटाणु पाये जाते हैं तथा जिस वायु में हम श्वास लेते हैं, उसमें भी विविध प्रकार के कीटाणु उड़ते फिरते हैं। जो रक्त हमारे शरीर के भीतर नस-नाड़ियों द्वारा चक्कर लगाता रहता है और जिसकी निरन्तर गति पर हमारे जीवन का आधार है उसमें भी कीटाणुओं के झुण्ड-के-झुण्ड पाये जाते हैं। जो भयंकर और असाध्य रोगों का कारण बन जाते हैं। वैज्ञानिकों ने सूक्ष्म कीटाणुओं को देखने के लिए एक यन्त्र का आविष्कार किया है

जिसे अणुवीक्षण यन्त्र (Microscope) कहते हैं । इस यन्त्र के सब से पहले निर्माता जैनसन महोदय हैं। जिन्होंने सन् १५९० में इसका आविष्कार किया । इसके पश्चात् विज्ञान-जगत् के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलिलियो ने इसे पूर्णता तक पहुँचाया ।

अणुवीक्षण यन्त्र के मुख्यतः तीन भाग होते हैं। एक नली जिसमें दो शीशे लगे होते हैं । एक ऊपर के भाग में दूसरा निचले भाग मे। दूरबीन मे तो वस्तु देखने वाला शीशा ऊपर तथा आंख का शीशा निचले भागमे होता है । परन्तु इस यन्त्र मे उलटा होता है। ऊपर के शीशे मे आंख से देखा जाता है और निचला शीशा वस्तुको देखने का होता है। पेच द्वारा दोनो शीशों का अन्तर बढ़ाया और घटाया भी जा सकता है । यन्त्र के दूसरे भाग को मंच कहते है। यन्त्र के तीसरे सब से निचले
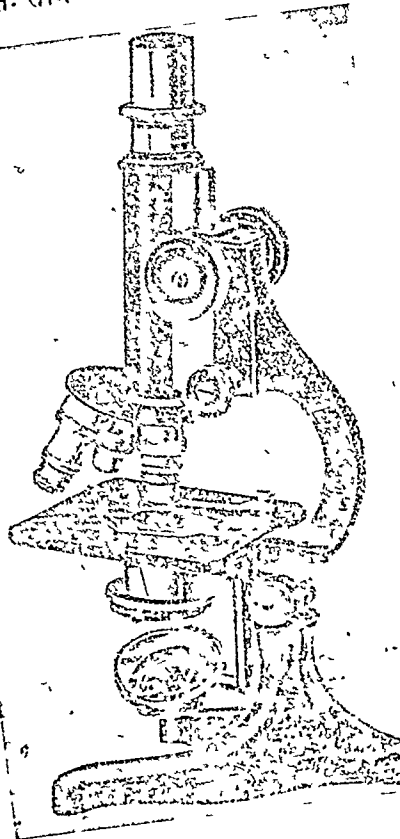
अणुवीक्षण यन्त्र

भाग में एक शीशा होता है जिसमें रोशनी की किरणें पड़कर मंच के छिद्र से होती हुई वस्तु पर पड़ती हैं। फिर चक्षुताल में होती हुई दर्शक के चक्षु तक पहुँचती हैं। इस शीशे से पड़ने वाले प्रकाश को आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक किया जा सकता है। इस यन्त्र के द्वारा सूक्ष्म वस्तु १७ हज़ार गुनी बड़ी करके दिखाई जा सकती है।

अणुवीक्षण यन्त्र के तीन प्रकार हैं। एक तो साधारण (Simple) जिससे निकट की वस्तु को बड़ा करके देखा जा सकता है। यह एक शीशे का बना होता है। दूसरा संयुक्त
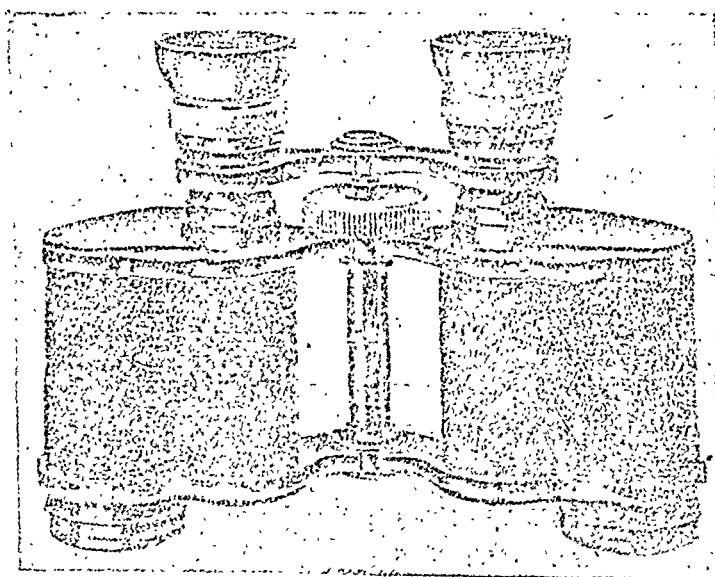
वायनाकुलर

अणुवीक्षण यन्त्र (Compound Microscope) होता है।

इसमें वस्तु देखने वाला तथा आँख वाला शीशा सदा नहीं होता परन्तु दो से अधिक शीशों का मिलाप होता है । इस से वस्तु को १७००० गुना बड़ा करके देखा जा सकता है । इसी का वर्णन ऊपर किया गया हैं । तीसरे प्रकार को वायनाकुलर (Benacular) कहते हैं । इसमें दोनों आंखों से देखने के लिए दो नालियां होती हैं । उनसे एक साथ ही दोनों आंखों से दूर की चीजें बड़ी दिखाई दे सकती हैं ।

इस यन्त्र के आविष्कार से आज के मानव समाज को अत्यन्त लाभ हो रहे हैं । इससे वैज्ञानिक संसार में काफी परिवर्तन हुआ है । विशेष कर चिकित्सा-विज्ञान के लिए तो अणुवीक्षण यन्त्र ने एक नवीन मार्ग ही खोल दिया है । आधुनिक डाक्टरों का यह विचार है कि प्राणी को शरीर का प्रत्येक रोग उसके कीटाणुओं से ही फैलता है । जिनको उन्होंने इस यन्त्र की सहायता से देखा है । तथा उनके नाश करने के लिए उन्होंने कई प्रकार के सफल इंजेक्शन बनाकर रोग चिकित्सा में प्रशंसनीय सिद्धि प्राप्त की है ।

२. 'क्ष' किरण (X-Ray)

पिछले प्रकरण में दूर और निकट की वस्तुओं को देखने के लिए दूरवीन आदि यन्त्रोंका वर्णन किया जा चुका है । यह बात भी भली भाँति दर्शाई जा चुकी है कि जिस प्रकार यह बाहर का विस्तृत विश्व है, उसी प्रकार हमारे शरीर के अन्दर भी एक विस्तृत तथा विचित्र संसार विद्यमान है । इस आभ्यन्तरिक जगत् की महत्ता और सार्थकता जानने के लिए चिकित्साशास्त्र के निपुण डाक्टरों के पास चीर-फाड़ के हथियारों के अतिरिक्त अन्य कोई विशेष साधन विद्यमान नहीं था । परन्तु अब एक ऐसे अद्भुत यन्त्र का आविष्कार हो गया है

का प्रतिविम्ब इस प्लेट पर पड़ता है। इस प्रकार पता लग जाता है कि कौन-सी हड्डी टूटी हुई है। अथवा कौन-सा अन्य दोष है। युद्ध में सैनिकों के शरीर में कभी-कभी गोली अन्दर ही रुक जाती है, जिसका पता लगाना कठिन हो जाता है परन्तु प्रकाश की इस किरण के आविष्कार से अब झट पट ज्ञान हो जाता है कि गोली शरीर के किस भाग में पड़ी है। उसको निकाल कर सैनिक की
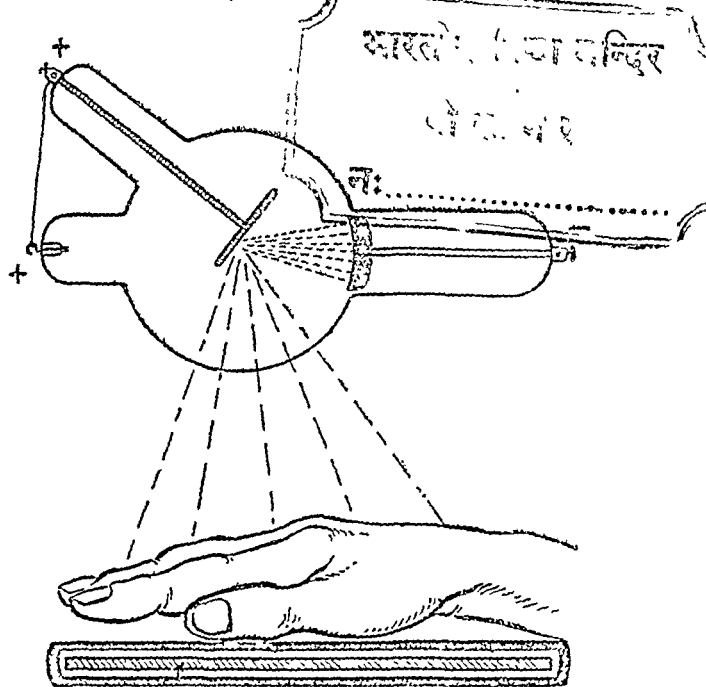
एक्स-रे एप्रेटस

जीवन रक्षा की जा सकती है। शरीर में पथरी का होना, फेफड़ों

की खराबी तथा अन्दर के व्रण आदि का एक्स-रे द्वारा पता लगाया जा सकता है।

इस प्रकार इस आविष्कार से शरीर रचना के ज्ञान तथा अन्दर के नाना प्रकार के दुःसाध्य रोगों का पता लगाकर उसका उपचार होने लगा है।

४

मनुष्य का प्रकृति पर आधिपत्य

यह समस्त विश्व पांच भूतों से पैदा हुआ है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी के संयोग से ही इस संसार की सत्ता का विधान दृष्टिगोचर हो रहा है। मनुष्य अपनी विशेषता से ही इन पांच भूतों को अपने अधीन करना चाहता है, तथा आरम्भ सृष्टि से ही वस इस प्रयास में मग्न रहा है। समय की प्रगति के साथ-साथ उस की सफलता की भी प्रगति होती गई और आज उसने अपने निरन्तर पुरुषार्थ से बहुत कुछ प्राकृतिक भूतों के गुप्त रहस्यों को जान लिया है।

जिस आकाश के नीचे हम रहते हैं, यह कितना विस्तृत है। सूर्य आदि समस्त प्रकाशित ज्योतियां इसी में ही अपनी नियत परिधि में घूमती प्रतीत होती हैं। सूर्य की प्रखर किरणें आकाश द्वारा ही हमारी पृथ्वी पर पहुँचती हैं। आकाश स्थावर तथा जंगम जगत् दोनों का जीवन है। यदि आकाश न हो तो सूर्य का प्रकाश हम तक कदापि नहीं पहुँच सकता। घोर अन्धकार का ही साम्राज्य हो। प्रकाश के विना जीवन एक पल भी विकसित नहीं हो सकता। इसके विना विश्व का विचित्र चित्र एकदम समाप्त हो जाय।

जिस वायु जगत् में प्राणी-मात्र श्वास लेता है, इसकी महत्ता

पर्याप्त मात्रा में पैदा न होने से संसार के विस्तृत कार्य को सम्पादित नहीं कर सकती। अतः प्रगति की ओर एक और पग उठा और युरोप के प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ़ैराडे ने सन् १८३१ में एक सिद्धान्त का पता लगाया कि जिन वस्तुओं में बिजली की लहर (Current) है जब वह गति में होती हैं तो अपने इर्द-गिर्द आकर्षण का क्षेत्र पैदा कर लेती हैं। इसके विपरीत जब चुम्बक को गति की अवस्था में किया जाय तो उससे बिजली की तरंगें पैदा होना स्वाभाविक है। यही नियम बिजली पैदा करने वाले डायनेमो (Dynamo) का आधार है। इसकी सहायता से बिजली की बड़ी-से-बड़ी तथा छोटी-से-छोटी शक्ति पैदा की जाती है।

६. बिजली के अद्भुत आविष्कार

टैलीग्राफ (तार)—सन् १७५३ में स्काटलैण्ड के एक वैज्ञानिक ने अपने विचार प्रकट करते हुए इस नियम का आविष्कार किया था कि बिजली की सहायता से शब्दों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जा सकता है। इंगलिस्तान के सर रोनाल्ड, कुक तथा
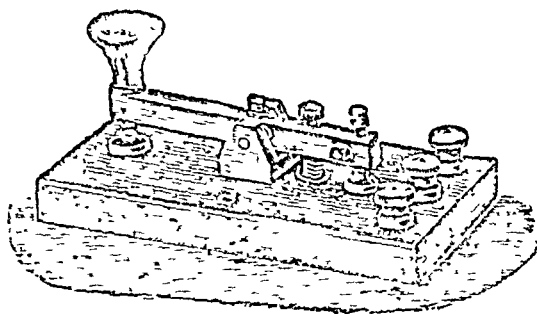
'की'

वीटस्टोन महोदयों ने १८८३ मे एक अन्य सिद्धान्त का पता लगाया

कि जब चुम्बकीय सूई को चुम्बक के पास लाया जाय तो सूई अपने स्थान से हिलकर परे हो जाती है। इसी नियम के आधार पर सबसे प्रथम तार की सूईयां बनाई गई। तार देते हुए ध्वनि पैदा नहीं होती थी। केवल सूईयों के हिलने से संकेतों का ज्ञान होता था। दूसरी अवस्था यह आई कि डायल पर अक्षरों का संकेत लिखा होता था। सूईयां जिस अक्षर की ओर संकेत करती थीं उसके अनुसार समाचार का परिचय मिलता। पहले सूईयों की संख्या ५ थी, फिर दो और अन्त में एक से ही काम लिया जाने लगा। कहीं-कहीं रेलवे मे आजकल भी यह पद्धति चल रही है। परन्तु सबसे सफलता पूर्ण तार के आविष्कार का श्रेय अमेरिका निवासी मोर्स महाशय को है। उसने तार के अक्षरों की ध्वनियों के संकेत नियत किये। इस आविष्कार की सन् १८३७ में रजिस्ट्री कराई गई। सन् १८४० में इसके तार का पूरा यन्त्र निकल आया। इसके विशेष दो भाग थे। एक 'की' (Key) जिसके द्वारा उंगलियों से संकेत भेजा जाय। दूसरा साऊंडर (Sounder) जिससे संकेत ग्रहण किया जाय। मोर्स विन्दु (Dots) और रेखा (Dash) प्रयोग में लाया। इन्हीं के आधार पर अक्षरों का कोड बनाया। संकेतों द्वारा एक ओर से
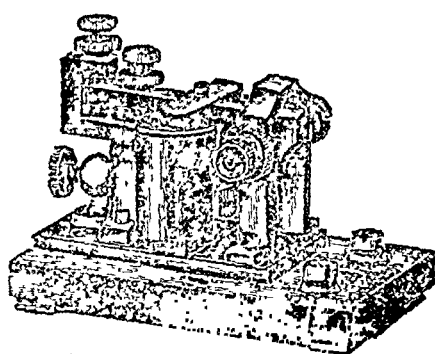
'साउण्डर'

संदेशा भेजा जाता है दूसरी ओर बैठा हुआ व्यक्ति इस टकटक की ध्वनि के संकेतानुसार अक्षर लिखता जाता है।

परन्तु उपर्युक्त आविस्कारों में एक कमी थी कि वहां हर समय एक आदमी के उपस्थित रहने की आवश्यकता थी। अतः फिर एक अवस्था आई कि साऊंडर (Sounder) पर काग़ज़ रख दिया जाता उस पर डाट्स (Dotes) व डैशस (Dashes) अर्थात् बिन्दु के लघु रेखा के चिह्न पड़ जाते। फिर उनको लेकर संकेतानुसार अनुवाद कर लिया जाता। इसके बाद एक और अवस्था बदली कि रोमन अक्षरों के लिखने का काम भी मशीन से लिया जाने लगा।

आज से कुछ समय पहले समाचार-पत्रों को जो संदेश भेजे जाते थे, वह भी तार द्वारा भेजे जाते थे। परन्तु एक और आधुनिक आविष्कार ने जिसे टेलीप्रिंट कहते है, सारी परिस्थिति बदल दी है। एक आदमी टाइप करके एक विशेष मशीन के ऊपर रख देता है उस मशीन के द्वारा वह स्वयं ही बिन्दु तथा रेखा में परिवर्तित होकर एक ओर काग़ज़ पर चित्रित हो जाता है। फिर यह डाट्स व डैशस के संकेत दूसरी मशीन द्वारा दूर स्थानों में बिजली के तारों द्वारा भेजे जाते हैं। दूसरी ओर एक मशीन पड़ी होती है जो इन संकेतों को अक्षरों में परिवर्तित कर देती है और टाइप की हुई चीज़ वैसे ही आ जाती है। इस आविष्कार ने समाचार पत्रों की दुनिया में विशेष परिवर्तन कर दिया है।

४. टेलीफोन—

जब हम तालाब में पत्थर फेंकते हैं तो उसमें तरंगें उठती हैं। इसी प्रकार जब हम बोलते हैं, तो हमारे इर्द-गिर्द की वायु में कम्पन पैदा होता है और तरंगें उत्पन्न होती हैं। वह वायु में चलती हुई

हमारे कानों में पहुँचती हैं। यह लहर एक तो बड़ी धीरे-धीरे चलती हैं तथा दूसरे यह ज्यों-ज्यों दूर जाती हैं, त्यों-त्यों लीन होती जाती हैं। इस नियम का आविष्कार किया गया कि यदि शब्द की तरंगों को बिजली की लहरों में परिवर्तित कर दिया जाय तो उनकी गति तीव्र हो जाती है तथा बहुत दूर तक उनको पहुँचाया जा सकता है। इसी नियम के आधार पर टेलीफोन का आविष्कार किया गया टेलीफोन का आविष्कार मनुष्य के कानों के नियम पर किया गया है। इसके दो भाग होते हैं। एक वह जिसमें हम बोलते हैं और दूसरा वह जो कान के साथ लगाया जाता है। टेलीफोन नवीन एप्रेटस में इन दोनों को एक यन्त्र में इकट्ठा कर दिया गया है। टेलीफोन के ट्रांसमीटर (Transmitter) में जब आवाज की जाती है तो वह उस पर्दे पर पड़ती है, जो ध्वनि की तरङ्गों को बिजली की लहरों में परिवर्तित कर देता है। इसी प्रकार रिसीवर

टेलीफोन यन्त्र

(Receiver) जिस भाग को हम कान से लगाते हैं, में भी एक पर्दा होता है जो उन बिजली की लहरों को फिर आवाज की लहरों

में बदल देता है। रिसीवर में भी इसी प्रकार की लहरें पैदा हो जाती हैं, जो बोलने वाले ने पैदा की थीं। इसी प्रकार जो बोला जाय, वही सुना जाता है। यह है नियम, जिनके आधार पर फोन बनाया गया।

टेलीफोन का सम्बन्ध करने के लिए एक भवन में स्विचबोर्ड होता है। इस पर हरेक टेलीफोन के सम्बन्ध किये होते हैं। जब हम टेलीफोन उठाते हैं तो स्विचबोर्ड लैम्प जल जाता है। ड्यूटी पर बैठा हुआ व्यक्ति झट समझ जाता है और पूछता है कि कौन-सा नम्बर चाहिए। जिस नम्बर की आवश्यकता हो झट उससे सम्बन्ध कर देता है। स्विचबोर्ड के सुराख में प्लग लगाने से सम्बन्ध हो जाता है। दूसरा ढंग यह है कि टेलीफोन के ऊपर घड़ी के समान निशानों वाला एक यन्त्र लगा रहता है। उसमें दस सुराख होते हैं। जिन पर एक से लेकर नौ तक और फिर शून्य लिखे होते हैं। जिस नम्बर को मिलाना हो। डायल के नम्बरों को घुमाकर वह नम्बर बनाते हैं। तब स्वयं स्विचबोर्ड पर सम्बन्ध हो जाता है। इस ढंग को स्वाभाविक पद्धति (Automatic System) कहते हैं।

टेलीफोन का आविष्कार सन् १८७६ में हुआ था। इसके आविष्कार की कथा भी बड़ी विचित्र है। स्काटलैंड के वासी ग्राहम बेल (Graham Bell) नामक व्यक्ति ने अपने मित्र वाटसन (Watson)नामक के घर में टेलीग्राफ लगाया। समय पाकर एक दूसरे को संकेत किया करते थे। एक बार वाटसन के स्प्रिंग में कुछ गड़बड़ हो गई। ठीक करने का यत्न किया, पर व्यर्थ। तब क्रोध में आकर वह स्प्रिंग पर हथौड़ों से चोटें करने लगा। दूसरी ओर ग्राहम को अपने कमरे में बैठे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके स्प्रिंग पर कोई हथौड़ा मार रहा है। वह सीधा वाटसन के घर गया।

वहां देखा कि वह स्प्रिंग पर दनादन चोट मार रहा है। तब उनके मन में विचार पैदा हुआ कि जब हथौड़े की चोटें तार द्वारा पहुँच सकती हैं, तब मनुष्य की आवाज़ पहुँचनी चाहिए। इस पर दोनों मित्र टेलीफोन के आविष्कार पर लग गए। उनके प्रयत्न सफल हुए और यह उपयोगी आविष्कार हुआ। ग्राहम बैल के टैलीफोन में यह दोष था कि वह कमजोर था तथा उसके द्वारा आवाज सुनाई नहीं देती थी। इन त्रुटियों को बाद में एडीसन ने अनेक परीक्षणों के पश्चात् दूर किया। आज हम घर बैठे जिससे चाहें बातचीत कर सकते हैं। इस समय संसार में टेलीफोनों की कुल सख्या ३ करोड़ ८० लाख से ऊपर ही है, तथा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

५. बे तार का तार

तार के आविष्कार में एक त्रुटि यह थी कि तार के लिए खम्भों तथा तार की आवश्यकता पड़ती थी। संयोगवंश आये हुए तूफानों में यह खम्भे उखड़ जाते और तार टूट जाती तो तार के कार्य में विकट बाधा उपस्थित हो जाती। समुद्रीय तारों में लहरों के उथल-पुथल होने से तारों मे गड़बड़ पैदा होने की सम्भावना होती। समुद्र की तरल तरंगों पर चलने वाले यात्री तथा व्यापार के जहाजों को जब कभी सामुद्रिक घटनाओं से सामना करना पड़ता तो वह अपनी दुर्घटनाओं की सूचना बाहर नहीं भेज सकते थे। इस प्रकार कई बार बहुमूल्य व्यापारिक वस्तुओं तथा यात्रियों की प्राण-हानि उठानी पड़ती। इसलिए इन त्रुटियों को दूर करने के लिए वैज्ञानिक किसी ऐसे आविष्कार की खोज में थे, जिससे इन खम्भों की आशंका से ही निवृत्ति मिल जाय। उनकी यह मनोकामना बेतार के तार के आविष्कार से पूरी हो गई। बेतार के तार के आविष्कार का आधार वही है, जिसका वर्णन बिजली के प्रकाश में किया जा

जा चुका है अर्थात् बिजली की तरंगों से आकाश में एक कम्पन-सा पैदा होता है। इसी कम्पन के मुख्य नियम पर इस वायरलैस का आविष्कार किया गया। बेतार के तार का सिद्धान्त यह है कि दो वस्तुओं को उलटी बिजली से भर दिया जाता है इन दोनों में एक गोल घुण्डी-सी लगी रहती है। और उन घुण्डियों में एक तार-सा लगा होता है। उनमें से एक तार तो वायु में बहुत ऊपर चला जाता है, दूसरा नीचे पृथ्वी में चला आता है। इन्हीं दोनों तारों के बीच में दोनों प्रकार की बिजलियाँ चलती हैं। जिस समय प्रवाह आरम्भ होता है, उस समय एक बार बिजली पृथ्वी पर फैलती है और दूसरी बार जब तार के सिरे तक चढ़ती है, तो पृथ्वी पर उन दोनों का प्रभाव सा हो जाता है। बस इसी से बिजली की लहरें पैदा होती हैं। संदेश भेजने वाला अपनी इच्छानुसार जितने तार चाहे भेज सकता है। इस बेतार के तार के आविष्कार में सबसे पहला नाम तो हर्ट्ज़ का ही आता है। उसने ही वैज्ञानिक जगत् का इस ओर ध्यान खींचा। परन्तु मारकोनी विशेष तौर पर इसके लिए प्रसिद्ध है। सन् १८९६ में मारकोनी इंगलैण्ड आया। उसने अपने परीक्षणों की सत्यता देखने के लिए लण्डन के जनरल पोस्ट आफिस पर ज़ोर दिया कि उसके परीक्षण देखे। कुछ दिनों बाद उसने अगले दो स्टेशनों पर इसके द्वारा अपना संदेश भेजा। सन् १८९९ में भी इंगलिश चैनल के पार उसने अपना संदेश वायरलैस द्वारा भेजा। इन सफलताओं से प्रोत्साहित होकर उसके प्रयत्न बढ़ते ही गए। फिर उसने वैज्ञानिकों के सामने वायरलैस द्वारा एटलांटिक के पार संदेश भेजने का विचार किया।

वैज्ञानिकों का विचार था कि मारकोनी का यह विचार केवल असफल तथा हास्यप्रद ही सिद्ध होगा। उनका विचार था कि

वायरलैस की तरंगें रोशनी की तरंगों के समान सीधी चलती हैं। तथा भूमि गोल होने के कारण वह तरंगें सीधी अमेरिका जाने की बजाय ऊपर वायु में ही रह जायंगी। पर मारकोनी निराश न हुआ। उसने एक स्टेशन पोल्डू तथा दूसरा न्यू फाऊंडलैण्ड में बनाया। वह पतंग के द्वारा बिजली को पकड़ने वाली तार (एरियल) को आकाश में ले गया। १२ दिसम्बर १६०१ के दिन उसने प्रबन्ध किया कि पोल्डू से टिक-टिक के तीन शब्द-वायरलैस से किये जायं। वह स्वयं साथियों सहित न्यूफाऊंडलैंड में बैठ गया। पतंग उसके सिर पर उड़ रहा था। वहां उसने टिक-टिक के शब्द सुने। इस पर वह फूला न समाया। यह उसके लिए ही नहीं अपितु वैज्ञानिक जगत् के लिए हर्ष का समय था। तब से बेतार का अधिकाधिक प्रचार होने लगा। भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बोस का भी इस आविष्कार को आगे ले जाने में काफी हाथ है।

६. रेडियो

वायरलैस में त्रुटियाँ थीं तो इसके लिए भी ऊंचे-ऊंचे खम्भों की आवश्यकता पड़ती थी, दूसरा इससे सर्वसाधारण लाभ नहीं उठा सकता था। केवल वायरलैस स्टेशन वाले व्यक्ति ही समाचार भेज तथा सुन सकते थे। इन त्रुटियों को दूर करने के लिए परीक्षणों के पश्चात् रेडियो का आविष्कार किया गया, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने घर पर बैठा हुआ संसार-भर के समाचार सुन सकता है। रेडियो का निर्माण भी वायरलैस के सिद्धान्त के आधार पर हुआ है।

रेडियो के दो भाग होते हैं एक ट्रांसमीटर, जिससे संदेश भेजा जाता है और दूसरा रिसीवर, जिससे संदेश ग्रहण किया जाता है। रेडियो के रिसीवर में एक साउंड बक्स लगा रहता है। इसके द्वारा आवाज़ अपनी इच्छा के अनुसार ऊँची या मध्यम की जा सकती है।

रेडियो के द्वारा हम वही कुछ सुन सकते हैं जो ब्राडकास्ट किया जाता है इसकी रीति है कि ब्राडकास्टिंग के कमरे में गाने वाले तथा समाचार सुनाने वाले माइक्रोफोन के सामने बैठकर बोलते हैं। यह वही माइक्रोफोन है, जिसे तुमने जलसों में व्याख्यानताओं के सामने लगा हुआ देखा होगा। यह आवाज बिजली के द्वारा दूर तक पहुँचाई जाती है। रेडियो की सहायता से अब घर पर बैठा हुआ व्यक्ति मन-चाहे स्थानों के समाचार, संगीत सुन सकता है।

रेडियो का आविष्कार किसने किया यह बताना कुछ कठिन ही है। क्योंकि किसी एक व्यक्ति को इसका श्रेय नहीं दिया जा सकता। जैम्स क्लार्क मैक्सवैल प्रथम व्यक्ति था जिसने बिजली की तरंगों का सिद्धान्त सर्वप्रथम संसार के सामने रखा। सन १८८७ में हर्टज ने इन विद्युत्-तरंगों का परीक्षण करने के पश्चात् यह विवेचना की कि जिस प्रकार रोशनी तथा गर्मी की तरंगे हैं उसी प्रकार बिजली की भी तरंगें हैं। इन दोनों के बाद मारकोनी की बारी आई। उसने पर्याप्त सफलता प्राप्त की। सम्भवतः इसलिए ही रेडियो के आविष्कार के साथ मारकोनी का नाम भी विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

रेडियो में एक भारी त्रुटि थी कि भेजे जाने वाले गुप्त समाचारों को शत्रु भी सुन सकता था। गत महायुद्ध में यह बाधा उपस्थित हुई। युद्ध सम्बन्धी गुप्त समाचार शत्रु सुनकर उनकी प्रतिक्रिया पहले ही न कर ले इसके लिए एक स्क्रेम्बलिंग (Scrambling) नाम की मशीन का आविष्कार किया गया। यह मशीन ट्रांसमीटिंग कमरे में लगी होती है। वह आवाज को तोड़-फोड़ देती है। इस प्रकार मार्ग में इन समाचारों का किसी को भी पता नहीं लग सकता। दूसरी ओर साथ में एक विशेष यन्त्र लगाया जाता है जो टूटी-फूटी आवाज को फिर वैसे ही इकट्ठी कर देता है और रिसीवर के द्वारा

वह खबर वैसी-की-वैसी ही सुनाई देती है। इस नई मशीन के आविष्कार से समाचारों को मार्ग में ही किसी अन्य द्वारा सुने जाने की आशंका सदा के लिए जाती रही है।

अब तो रेडियोफोन भी बन गया है। इसने तार तथा टेलीफोन दोनों का स्थान ले लिया है। इसमें रेडियो ट्रांसमीटर तथा रेडियो रिसीवर इकट्ठे लगे होते हैं। जिससे व्यक्ति बोल भी सकता है और सुन भी सकता है।

७. टेलीवीज़न

तार और वायरलैस के द्वारा चित्र का भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजा जाना कम अचम्भे की बात नहीं। इसके द्वारा लन्दन का एक दैनिक पत्र न्यूयार्क में एक घंटा या इसके लगभग पूर्व लिये हुए चित्र को अपने समाचार-पत्र में छाप सकता है। इस आविष्कार का आधार फोटो इलैक्ट्रिक सैल के आधार पर है, जिसमें पोटाशियम या सोडियम का प्रयोग किया जाता है। उसी प्रकार टेलीवीज़न में रोशनी की लहरों को बिजली की लहरों में परिवर्तित किया गया है। यह बिजली की धाराएं प्रकाश की तरंगों के समान ही बड़ी और छोटी होती हैं।

यदि आप चित्र को देखें तो प्रतीत होगा कि यह प्रकाश तथा छाया का सम्मेलन है। चित्र के भिन्न-भिन्न भागों पर प्रकाश की अधिकता तथा न्यूनता रहती है। इसी कारण से ही हमको यह तस्वीर प्रतीत होती है।

चित्र को टेलीवीज़न द्वारा भेजने का वही नियम होता है जो पुस्तक के एक पृष्ठ को पढ़ने का होता है। इस सिद्धान्त पर जब किसी चित्र को टेलीवीज़न द्वारा भेजना हो तो उसे एक सलैंडर पर जमा देते हैं। यह सलैंडर समान वेग से घूमता जाता है। तीव्र प्रकाश

का एक अत्यन्त सूक्ष्म विन्दु इस चित्र पर बाईं ओर से पड़ता है। यह प्रकाश विन्दु उस चित्र को सीधो रेखा पर प्रकाशित करता जाता है। जब पहली सीधी रेखा समाप्त हो जाय तो दूसरी को। इसी क्रम से वह विन्दु समूचे चित्र पर डाला जाता है। इस क्रिया को स्कैनिंग (Scanning) क्रिया कहते हैं। इस यन्त्र में जो सैल लगे होते हैं वह रोशनी की धाराओं को बिजली की धाराओं में
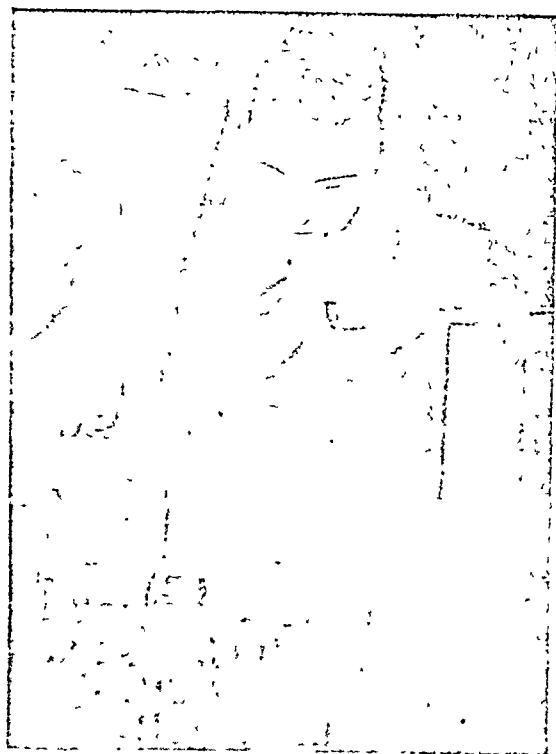
टेलीप्रिंटर के द्वारा समाचार पत्र

परिणत कर देते हैं । फिर इन बिजली की लहरों को तार, टेलीफोन
अथवा वायरलैस द्वारा भेजा जाता है । परन्तु यदि आकाश सम्बन्धी
गड़बड़ हो तो दूसरी ओर चित्र में भी गड़बड़ के प्रभाव की सम्भावना है।

दूसरी ओर जब यह बिजली की धाराएं पहुँचती हैं तो वहाँ
फिर यन्त्र के द्वारा उनको पूर्वावस्था में अर्थात् प्रकाश की
धाराओं में परिवर्तित कर दिया जाता है । वहाँ फोटो का कागज़
पड़ा होता है । उस पर वह लहरें चलती हैं । इस क्रिया से भेजा
जाने वाला चित्र वैसे-का-वैसा उस कागज़ पर बनता चला जाता है।

टेलीवीज़न के द्वारा सबसे पहला चित्र परीक्षण सन् १९२५ में
जे० एल बयर्ड ने दिखाया था। अमेरिका में सन् १९२९ में टैलिविज़न
ब्राडकास्टिंग प्रारम्भ हुआ था । वहाँ अब ऐसे समाचार पत्र छप रहे
हैं, जिनमें टेलीवीज़न तथा टेलीप्रिंटर साथ-साथ ही हैं । इस प्रकार इस
अद्भुत आविष्कार से रेडियो के द्वारा जहां हम हर प्रकार की बात
सुन सकते हैं, वहां हर प्रकार का चित्र भी देख सकते हैं ।

८. चलती-फिरती तथा बोलती तस्वीरें

सिनेमा आपने कई बार देखा होगा । चकित हो आप यह
जाना चाहते होंगे कि परदे पर यह चित्र किस प्रकार चलते तथा
बोलते हैं। इस रहस्य का वर्णन नीचे किया जाता है ।

ढाई इंच चौड़ी और कई सौ फुट लम्बी सिलोलायड की एक
पट्टी होती है। जिस पर फोटो का मसाला लगा होता है। इसको
एक चक्कर पर लपेट दिया जाता है । इस पट्टी को फोटो कैमरे के
सामने इतनी शीघ्रता से गुज़ारा जाता है कि एक सेकण्ड में इसने
लगभग दो दर्जन चित्र उतर जाते हैं ।

इसका निर्माण इस नियम पर किया गया कि यदि हिलती हुई
वस्तुओं का क्रम से एक-एक करके शीघ्र-शीघ्र चित्र लिया जाय, फिर

तेज प्रकाश द्वारा उतनी शीघ्रता से परदे पर उनकी परछाईं डाली जाय तो दर्शकों के लिए यह जानना कठिन होगा कि पहली तस्वीर को हटाकर दूसरा चित्र दिखाने में भी कुछ समय लगा है। इसका कारण यह है कि जब कोई तस्वीर देखी जाती है तो एक सेकण्ड के १० हिस्से तक उसका संस्कार बना रहता है। क्योंकि ये तस्वीरें इतनी तेजी के साथ घूमती हैं अतः एक के बाद शीघ्र ही दूसरा चित्र आने से हम समझते हैं कि यह इकट्ठी ही चल रही हैं। चित्रों के बोलने का नियम वही है जो ग्रामोफ़ोन का आधार है। इस पट्टी के किनारों पर आवाज की रेखाएं आरोह और अवरोह के क्रम से अंकित होती हैं जब पट्टी घूमती है तो उसके किनारे की इन शब्दों की रेखाओं पर रोशनी की एक अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु तीव्र धारा को डाला जाता है। जैसे-जैसे वे रेखाएं होती हैं उसी क्रम से प्रकाश उन पर पड़ता है। इससे वे बिजली के प्रकाश की धाराएं विशेष यन्त्र द्वारा आवाज की धाराओं में परिवर्तित होती हैं। इस प्रकार चित्र में आवाज पैदा हो जाती है।

इन फिल्मों को बनाना भी कुछ कम आश्चर्यजनक नहीं है। जिस स्थान पर इनको तैयार किया जाता है उसे 'स्टुडियो' कहते हैं। वहाँ चित्र खींचने तथा आवाज भरने के लिए दोनों प्रकार की सामग्री एकत्रित होती है। काम करने वाले अभिनेता (Actor) तथा अभिनेत्री (Actress) अपने नियम से कैमरे के सामने आते-जाते हैं। चित्र लेने वाला तथा आवाज भरने वाला दोनों पहले से ही वहाँ तैयार होते हैं।

चित्रकार साथ-साथ कार्य करने वाले के चित्र खींचता है आवाज भरने वाला जहाँ जहाँ जो आवाज भरनी हो, भरता [illegible] इस प्रकार फिल्म तैयार की जाती है। चित्र खींचने [illegible]

लम्बाई लगभग ६०० फुट होती है। ऐसे १२ अथवा १५ टुकड़ों को मिलाकर खेल पूरा किया जाता है। प्रत्येक चित्र डेढ़ इंच चौड़ा होता है। यह फिल्म मशीन पर एक सेकण्ड में १½ फुट की प्रगति से चलाया जाता है।

जब मशीन के द्वारा इस फिल्म को चलाया जाता है, तो फिल्म की प्रतिच्छाया चादर पर पड़ती है तथा उपर्युक्त साधनों से चित्र के साथ आवाज भी पैदा होती जाती है।

चलती-फिरती और बोलती तस्वीरों का आधार कैमरा फोटोग्राफी और ग्रामोफोन रेकार्डिंग पर है। दोनों आविष्कार एक ही सिद्धान्त के आधीन हैं। सिनेमा का आविष्कार १९२७ ई० में एडीसन ने किया था।

आज विज्ञान के अन्य सारे आविष्कारों की अपेक्षा फ़िल्मों का प्रयोग बहुत अधिक है। इससे अनेक कार्य लिये जाते हैं, मनोविनोद राष्ट्रोत्थान, शिक्षा-विकास आदि आवश्यक साधनों में इसका प्रयोग होता है।

इस महायुद्ध से पूर्व ब्रिटेन में ४३०५ सिनेमा-घर थे। जिनमें ७५,००० मनुष्य कार्य कर रहे थे। तथा दो करोड़ मनुष्य प्रति सप्ताह सिनेमा देखते थे। अमेरिका में इसका सबसे बड़ा व्यवसाय है। इस व्यवसाय पर संसार में ८० करोड़ पौंड के लगभग लगे हैं, जिसमें आधा धन अमेरिका निवासियों ने लगाया हुआ है।

५

मनुष्य बुद्धि का दुरुपयोग

मनुष्य ने जहाँ एक ओर अपने सुभीते तथा जीवन के आमोद-प्रमोद के लिए नाना प्रकार के लोकोपकारक आविष्कार अपनी बुद्धि

में किये, वहां दूसरी ओर दूसरों पर अपना प्रभुत्व व आधिपत्य बिठाने एवं उनको अपने अधिकार में लाने के लिए कई प्रकार के विध्वंसक भीषण यन्त्र भी पर्याप्त संख्या में बनाए, जिनका प्रयोग करके उसने निरपराध व्यक्तियों के खून से होली खेल कर अपनी नृशंस भावना को जन्म दिया। गत महायुद्ध में इस प्रकार के संहारकारी अस्त्र-शस्त्रों का खुले रूप में प्रयोग किया गया। उनके कारण सुन्दर भवन राख का ढेर बन गए, नगर उजड़ गए, लाखों व्यक्तियों के रक्त से युद्ध-स्थल को रंजित किया गया। उनका संहार करने वाले जल-स्थल तथा आकाशीय अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन इस अध्याय में किया जायगा।

१. स्थलयुद्ध के अस्त्र-शस्त्र

मध्यकाल में स्थलयुद्ध के लिए केवल साधारण से हथियार प्रयोग में लाए जाते थे। उनको अस्त्र-शस्त्र कहा जाता है। तीर, चक्र, गोली आदि को अस्त्र तथा बरछी, तलवार, गुर्ज को शस्त्र के नाम से पुकारा जाता है। पूर्वकालीन हथियार आधुनिक शस्त्र-अस्त्रों की भांति इतने भयानक नहीं थे। उस काल की बन्दूकें साधारण थीं। उनमें एक गोली ही भरी जा सकती थी। उसके चलाने के बाद ही नाली में दूसरी गोली भरी जा सकती थी। परन्तु आज के हथियार काफ़ी प्रगति कर चुके हैं। इनमें से कुछ का हाल नीचे दिया जाता है।

(क) बन्दूकें—पहले युग को बन्दूक युग ही कहना चाहिए बन्दूकों में कई प्रकार के परिवर्तन हुए। एक नाली वाली बन्दूक में बारूद भरने में काफ़ी समय लगता था। तथा गोली के चूक जाने पर शत्रु के प्रहार का भय था। अतः दूसरी अवस्था वह आई जब कि बन्दूक में गोली भरी-भराई होती थी। फिर दो नाली वाली

बन्दूक का निर्माण किया गया। इसमें दो गोलियां एक साथ ही निकलती थीं ! अब तो अंग्रेजों की टामीगन नामक बन्दूक है, उनमें से एक मिनट में ६५० गोलियां चल सकती हैं। यह ६० गज फासले तक मार कर सकती हैं। इसके पश्चात् ब्रेन (Bran) नामक मशीनगन का प्रयोग आरम्भ हुआ। इसके द्वारा एक मिनट मे ५०० राउंड चलाये जा सकते हैं। एक हज़ार गज तक यह मार कर सकती है। आजकल प्रायः इन्हीं मशीनगनों का प्रयोग होता है।

(ख) तोपें—बन्दूक युग ने उन्नति तो की, परन्तु जब देखा गया कि लोगों ने बड़ी-बड़ी दृढ़ क़िले-बन्दियां कर ली हैं, जिनको तोड़ना उपरोक्त बन्दूकों की शक्ति से परे था। तब इससे अधिक प्रभावशाली अस्त्रों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इन अस्त्रों में तोप का स्थान सबसे ऊँचा है। पहले छोटी तोपें बनीं, फिर बड़ी-बड़ी बनाई गई। इसके द्वारा बड़े-बड़े गोले दूर-दूर तक जा सकते हैं। गत महायुद्ध में भी तोपों से काफी कार्य लिया गया। जर्मनी ने कई ऐसी तोपें बनाईं, जिनसे नर-संहार के लिए काफ़ी सहायता ली गई। उसकी 'बिगवर्था' नामक तोप तो विशेष उल्लेखनीय है। उसमें ७०-८० मील की दूरी से पैरिस पर गोले फैंके गए थे। अमेरिका ने एक तोप तैयार की जिसका वजन ३०,७६५ पौंड है। यह २५ हजार गज तक मार कर सकती है। जर्मनी ने गत महासमर में अपनी तोपों के द्वारा हालैण्ड से इंगलिस्तान पर गोले बरसाये थे।

जंगी जहाजों पर भी बड़ी-बड़ी तोपें लगी हुई होती हैं। जिनसे दूर तक मार की जा सकती है। 'रोडनी' और 'नेलसन' जहाज पर १६ इंच वाली ६ तोपें चढ़ाई गई थीं। इनको बिजली का बटन दबा-कर, एक साथ ही चलाया जा सकता था। हरेक तोप से ३०-३० मन का गोला २० मील तक मार करता था। इन गोलों से ६ इंच

मोटी फौलाद की चादर छेदी जा सकती थी।

(ग) टैंक—इन भीषण तोपों तथा बन्दूकों से बचने के लिए टैंकों का निर्माण किया गया। टैंक क्या हैं? ये एक प्रकार के सुरक्षित किले ही हैं। यह टैंक ऐसी सुदृढ़ चादर से बने होते हैं, कि जिन पर साधारण बन्दूक तथा तोप के गोलों का किसी प्रकार का प्रभाव नहीं होता। इनके लिए सड़कों की आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

टैंक भिन्न-भिन्न प्रकार के बने हैं। इनका वज़न भी पृथक्-पृथक् है। इन पर गड़ी हुई तोपें भी भिन्न-भिन्न वज़न तथा गोलों की होती हैं।
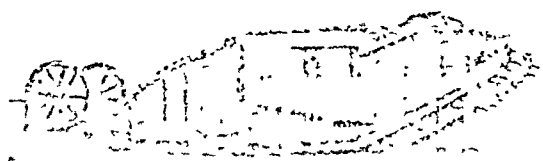
पहला अंग्रेजी टैंक (१६१५)

यह टैंक ऊबड़-खाबड़ भूमि पर बड़ी सरलता से चल सकते हैं। अंग्रेजों का पहला टैंक सन् १६१५ में बना था। इसकी प्रगति ३ से ४ मील तक थी। परन्तु जो वर्तमान युग का टैंक है, उसकी गति साधारण सड़क पर ६० मील प्रति घण्टा है। पटरियों पर भी वह ४० मील की प्रगति से चल सकता है। सन १६३१ में
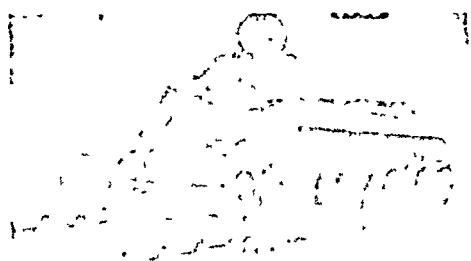
पटरी पर चलने वाला टैंक

अंग्रेजों ने एक नवीन प्रकार का टैंक बनाया। जो ४० मील प्रति घण्टे की प्रगति से स्थल पर चलता था और ६ मील प्रति घण्टे गति से पानी चलता था। इस महायुद्ध मे जर्मनी ने ४० मील प्रति घण्टे की प्रगति वाले टैंकों से फ्रांस पर आक्रमण किया था। अब बड़े-बड़े टैंक भी बन रहे हैं। रूस के टी० जी ४ नामक टैंक का वजन १०० टन है। यह २५ मील प्रति घण्टा की रफ्तार से चल सकता है। वैज्ञानिक लोग आजकल ऐसा टैंक बनाने मे लगे हुए हैं जो जल तथा स्थल पर चलने के साथ-साथ आकाश मे भी उड़ सके।
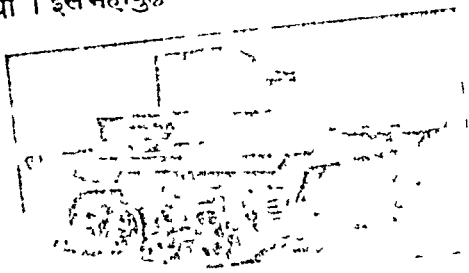
स्थल तथा जल पर चलने वाला टैंक
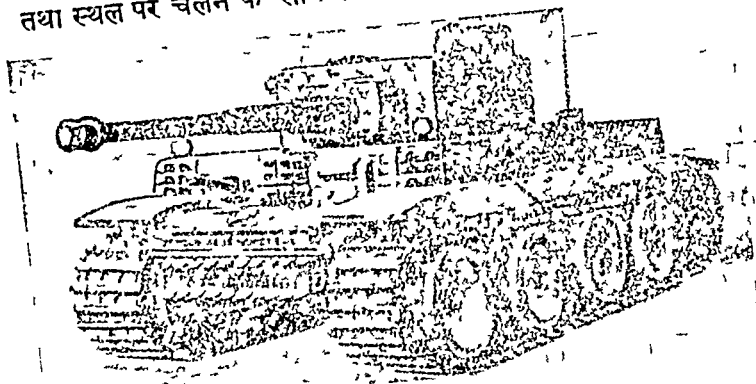
जर्मनी का टाईगर नामक टैंक

(घ) एंटी टैंक तोप—जहां इन टैंकों का निर्माण किया गया

है परन्तु पनडुब्बी अन्दर भी चलती है, और पानी के बाहर भी चलती है। यह भी एक प्रकार का जहाज़ ही है, परन्तु यह छोटी होती है। यह बिजली द्वारा चलती है। इसकी गति जल के ऊपर १२ से २१ नाट (समुद्रीय मील जो १.१५ साधारण मील के बराबर होता है) और समुद्र के अन्दर ७ से १० नाट होती है। डुबकनियां छोटी और बड़ी भेद से दो प्रकार की होती हैं। छोटी पनडुब्बी एक हजार मील के घेरे में और बड़ी १६ हजार मील के घेरे में घूम सकती है। यह पानी के अन्दर २५० से ३५० फुट की गहराई तक चल सकती है। इसके नीचे पानी के दबाव के कारण इसके टूट-फूट जाने का भय होता है। यह पानी के अन्दर दो दिन तक रह सकती है। इसमें सब से मुख्य शस्त्र टारपीडो होता है।

सबसे पहले पनडुब्बी का आविष्कार जर्मनी में हुआ। वह सन् १६०६ में जर्मनी की कील नामक बन्दरगाह में तैयार की गई थी। उसकी गति समुद्र के ऊपर ११ नाट तथा पानी के नीचे ६ नाट थी। उसमें केवल एक टारपीडो आता था। वह ८ सौ से लेकर ६ सौ अश्वबल की शक्ति की थी, परन्तु वर्तमान समय की ब्रिटिश पनडुब्बी १५२० टन वज़न की तथा ३२०० अश्वबल की शक्ति की है। इसमें विशेष प्रकार की चार इंच से लेकर १२ इंच सुराख वाली तोपें लगी होती हैं।

(ग) टारपीडो—डुबकनी किश्ती से जहाजों को नष्ट करने के लिए जो शस्त्र छोड़ा जाता है, उसे टारपीडो कहते हैं। यह भी एक प्रकार का विस्फोटक बम ही होता है। इसमें दबी हुई हवा होती है, जिसके बल से यह चलता है। समुद्र में एक खास फासले तक ही जा सकता है। चार से पांच टन तक इसका वजन तथा २० फुट तक इसकी लम्बाई होती है। यह तीन मील तक मार कर

सकता है। इसमें ऐसे यन्त्र लगे रहते हैं जो इसे नियत स्थान पर ले जाते हैं। जिस समय इसे छोड़ा जाता है, इसका अगला सिरा जहाज के साथ टकराता है। उसी समय फट कर विध्वंस का कारण बनता है। पहले जिस जहाज में यह लगा रहता था, समुद्र मार्ग में किसी लकड़ी अथवा अन्य किसी सामुद्रिक चीज के साथ टकराकर फट जाने पर यह दूसरी चीज के साथ अपने से सम्बन्धित जहाज को भी डुबा देता था, परन्तु अब इसके साथ सेफ्टी फैन (Safety Fan)लगा दिया है। जब किसी पर चलाना हो तो इसे खोल दिया जाता है। जल में दूर तक तैरते हुए यह फटता है। इससे उस सम्बन्धित जहाज़ को किसी प्रकार की हानि नहीं होती।

(छ) **डुबकनी ध्वंसक** (Depth Charger)—मनुष्य ने डुबकनी जैसे जहाज विध्वंसक जलशस्त्र का निर्माण करके समुद्र के नीचे भी अपने प्रभुत्व की छाप लगाई है, वहां मनुष्य के दिमाग ने एक और ऐसा शस्त्र भी बनाया है, जो डुबकनी को भी नष्ट कर देता है। इस शस्त्र का नाम डुबकनी ध्वंसक है। यह भी एक प्रकार का टारपीडो है। यह पानी में बड़े वेग से जाकर फटता है। जहां पर यह फटता है वहां २००-३०० गज़ आस-पास यदि डुबकनी आ जाय तो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है, डुबकनी के डूबने से उसका तेल-पानी के ऊपर आ जाता है। जिससे उसके ध्वंस हो जाने का निश्चय हो जाता है। आजकल डुबकनी का पता लगाने के लिए जहाजों में शब्द ग्रहण करने वाले यन्त्र (Sound Detectors) लगे होते हैं, जिनमें पनडुब्बी का पता लगाकर उससे सुरक्षा का प्रबन्ध कर लिया जाता है।

(ज) **सुरंगें**—यह एक प्रकार की लोहे की बन्द बड़ी-बड़ी

पेटियाँ होती है जिनके अन्दर विध्वंस करने वाले विस्फोटक पदार्थ भरे रहते हैं। यह पानी में तैरती रहती हैं। ज्यों ही कोई जहाज इनसे टकराता है यह सुरंगें फूटकर जहाज में छेद कर देती हैं। इसके तीन प्रकार हैं। एक वे जो जल पर तैरती रहती हैं; जहाज़ को उनके समीप जाने पर ही भय होता है। दूसरी वह जो इनसे भयंकर हैं। उनको चुम्बकीय सुरंगें कहा जाता है। उनके आकर्षण की एक सीमा होती है। जब कोई जहाज उनकी आकर्षण-सीमा में पहुँचता है तो ये सुरंगें जहाज की ओर भागती तथा उसका नाश कर देती हैं। तीसरी स्थायी सुरंगें हैं जिनको किनारे पर रखा जाता है। शत्रु का जहाज समीप आने पर इनको उन पर बिजली द्वारा चलाया जाता है। ये लगते ही जहाजों को विध्वंस कर देती हैं. गत महायुद्ध में इनके द्वारा अनेकों भीषणकाय जहाज समुद्रतल पर पहुँचा दिये गए। तथा सहस्रों मानवों की जीवन-हानि हुई। यह जलयुद्ध सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्रों का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

३. आकाश युद्ध के अस्त्र-शस्त्र

सैन्यवासों, सड़कों तथा आवागमन के दूसरे साधनों पर बम वर्षा करके तहस नहस करना होता है। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े शहरों पर बम-वर्षा करके लोगों को भयभीत करने के लिए इनको प्रयोग में लाया जाता है। युद्धक्षेत्र में सेना के हमले से पूर्व यह शत्रु की सेना पर टूटकर सब ओर गड़बड़ मचा अपनी सेना के बढ़ने का मार्ग बनाते हैं। इनमें प्रसिद्ध लङ्केस्टर, हेलिफैक्स और फ्लाइंग फोर्ट्रेस नामक हैं। यह लगभग ३५० मील प्रति घण्टा की गति से उड़ सकते हैं। और इनमें प्रायः सात नायक होते हैं।

(२) लड़ाकू विमान (Fighter)—यह विमान किनारे की रक्षा के लिए प्रयोग किये जाते हैं और शत्रु के विमानों से भिड़कर उन्हें नीचे गिरा देते हैं। यह हलके-फुलके तथा बड़ी तीव्र गति वाले होते हैं। इनमें चील की तरह झपटने की शक्ति होती है। यह कुछ

अमेरिका का थण्डरबोल्ट नामक लड़ाकू जहाज यह ४०,००० फुट की ऊँचाई पर ४०० मील प्रति घण्टा की गति से उड़ सकता है।

पेटियाँ होती है जिनके अन्दर विध्वंस करने वाले विस्फोटक पदार्थ भरे रहते हैं। यह पानी में तैरती रहती हैं। ज्यों ही कोई जहाज इनसे टकराता है यह सुरंगें फूटकर जहाज में छेद कर देती हैं। इसके तीन प्रकार हैं। एक वे जो जल पर तैरती रहती हैं; जहाज़ को उनके समीप जाने पर ही भय होता है। दूसरी वह जो इनसे भयंकर हैं। उनको चुम्बकीय सुरंगें कहा जाता है। उनके आकर्षण की एक सीमा होती है। जब कोई जहाज उनकी आकर्षण-सीमा में पहुँचता है तो ये सुरंगें जहाज की ओर भागती तथा उसका नाश कर देती हैं। तीसरी स्थायी सुरंगें हैं जिनको किनारे पर रखा जाता है। शत्रु का जहाज समीप आने पर इनको उन पर बिजली द्वारा चलाया जाता है। ये लगते ही जहाजों को विध्वंस कर देती हैं. गत महायुद्ध में इनके द्वारा अनेकों भीषणकाय जहाज समुद्रतल पर पहुँचा दिये गए। तथा सहस्रों मानवों की जीवन-हानि हुई। यह जलयुद्ध सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्रों का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

३. आकाश युद्ध के अस्त्र-शस्त्र

(क) **विमान**—आकाश-युद्ध का प्रधान अंग विमान हैं। इस युद्ध में इनका खूब प्रयोग किया गया है। विमानों से कई प्रकार के काम लिये जाते हैं। जैसे अपने जहाज़ों की रक्षा करना इधर उधर शत्रु की खोज़ लगाना आदि। सो इन सबके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के वायुयानों का निर्माण किया गया है। इनके मुख्य भेद ये हैं:—

(१) **बमवर्षक** (Bomber)—यह विमान बहुत भारी, मजबूत तथा अधिक अश्व बल वाले होते हैं। इनकी गति तो बहुत तेज नहीं होती, पर बहुत दूर तक उड़ सकते हैं, और खूब बोझ भी उठा सकते हैं। इनका कार्य शत्रु के इलाके में जाकर कारखानों, पुलों,

सैन्यवासों, सड़कों तथा आवागमन के दूसरे साधनों पर बम वर्षा करके तहस नहस करना होता है। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े शहरों पर बम-वर्षा करके लोगों को भयभीत करने के लिए इनको प्रयोग में लाया जाता है। युद्धक्षेत्र में सेना के हमले से पूर्व यह शत्रु की सेना पर टूटकर सब ओर गड़बड़ मचा अपनी सेना के बढ़ने का मार्ग बनाते हैं। इनमें प्रसिद्ध लङ्केस्टर, हेलिफैक्स और फ्लाइंग फोर्ट्रेस नामक हैं। यह लगभग ३५० मील प्रति घण्टा की गति से उड़ सकते हैं। और इनमें प्रायः सात नायक होते हैं।

(२) लड़ाकू विमान (Fighter)—यह विमान किनारे की रक्षा के लिए प्रयोग किये जाते हैं और शत्रु के विमानों से भिड़कर उन्हें नीचे गिरा देते हैं। यह हलके-फुलके तथा बड़ी तीव्र गति वाले होते हैं। इनमें चील की तरह झपटने की शक्ति होती है। यह कुछ

अमेरिका का थण्डरबोल्ट नामक लड़ाकू जहाज यह ४०,००० फुट की ऊँचाई पर ४०० मील प्रति घण्टा की गति से उड़ सकता है।

ही मिनट में कई मील ऊँचा उड़ जाते हैं।

यह जहाज़ भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, कुछ तो ऐसे जो हवा में कम देर और कुछ ऐसे जो हवा में अधिक देर तक रह सकते हैं। पहली तरह के विमान तो शत्रु के विमानों को गिराने के लिए होते हैं और दूसरे अपने बम-वर्षकों की रक्षा के लिए उनके साथ शत्रु के इलाके में जाते हैं। इस प्रकार के बहुत प्रसिद्ध विमान (१) स्पिट फाईर (Spit-fire), (२) हरीकेन (Hurricane) (३) ब्यूफाईटर (Beau-fighter) (४) फ़ाकवुल्फ़ (Fock-wulf) (५) थण्डरबोल्ट इत्यादि हैं।

(३) **बमवर्षक लड़ाकू**—यह वह जहाज़ है जो समय पड़ने पर बमवर्षक तथा लड़ाकू विमान की तरह बरते जा सकते हैं। इनमें से प्रसिद्ध मास्कीटो (Mosquito) टाईफून(Typhoon) मस्टांग (Mustang) और मैसरशमिट ने खूब नाम कमाया है।

(४) **समुद्री विमान** (Sea-plane)—यह वह विमान है जो जल से ही हवा में उड़ते हैं और फिर समुद्र में ही उतरते हैं।

(५) **सीधा उड़ाका**—यह वह विमान है जो जमीन से सीधे ऊपर उठ जाता है, और फिर सीधा नीचे उतर आता है। इस प्रकार के विमानों के लिए बड़े-बड़े हवाई मैदानों की आवश्यकता नहीं पड़ती। अब तो यह भी आशा की जाती है कि हवाई जहाज़ मकान की छतों पर उतरा करेंगे।

(ख) **बम**—इसे युद्ध की आत्मा कहें तो उचित होगा। यह आकार में लम्बा होता है, गोल नहीं। इसका भार एक सेर से लेकर कई मनों तक का होता है। बड़े-बड़े नगरों को पल भर में आग लगा देना तो इसके लिए साधारण बात है।

बम भी कई प्रकार के हैं, जिनमें प्रसिद्ध निम्नलिखित हैं:—

(१) **परमाणु बम** (Atomic Bomb)—इस बम का जन्म-स्थान अमेरिका है। पर कहा जाता है कि जर्मनों ने भी लगभग इसे बना लिया था। यह इस युद्ध की सबसे भयंकर खोज है। ऐसे एक दो बमों ने जापान को हथियार डालने पर बाध्य कर दिया। हिरोशिमा पर इसके गिरने के बाद वहाँ का वर्णन सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जापान के इतने बड़े नगर की ईंट-से-ईंट बज गई और हजारों मनुष्यों का नाम निशान मिट गया।

(२) **उड़ाका बम** (Flying Bomb)—इस बम का जन्म स्थान जर्मनी है। यह बहुत भारी और बड़ा होता है और रेडियो की तरंगों (Radio Woves) के ज़ोर से उड़ता है। यह पहले ५० मील हवा में सीधा उड़ता और फिर जब हवा का अवरोध बिलकुल कम हो जाता है तो अपना रुख बदल लेता है और भारी विस्फोट के साथ फटता है। इस बम ने लन्दन-जैसे सुन्दर नगर को खण्डहरों का ढेर बनाकर रख दिया था।

(३) **गैस बम**—यह वह बम है जिसके फटते ही जहरीली गैस हवा में मिलकर बीमारियों तथा मृत्यु का कारण बन जाती है। पर अब तो इनसे बचने के लिए गैस मास्क बना दिये गए हैं।

(ग) **गैसें**—इसका प्रयोग पिछली जंग में हुआ था, पर इस जंग में नहीं। इनमें से निम्नलिखित बहुत प्रसिद्ध हैं।

(१) **अश्रु गैस** (Tear Gas)—इससे नेत्रों में पीड़ा और जलन होती है और फेफड़ों में भी जलन होती है।

(२) **हँसी गैस** (Laughing Gas)—इससे मनुष्य को

गुदगुदी-सी होती है और हँसने लगता है। इसका युद्ध में कोई प्रयोग नहीं होता।

(ग) **श्वास प्रदाहक गैस** (Choking Gas)—इस गैस से साँस रुक जाता है और यह आमतौर पर जहरीली होती है।

(घ) **विमान भेदी तोप** (Anti-Aircraft Gun) इन तोपों से आकाश में दूर-दूर गोले फैंककर शत्रु के विमानों को गिराया जाता है। इसका गोला २० हजार फुट तक मार करता है। इसका निशाना सर्च लाईट (Searchlight) (जिसमें से आकाश पर बहुत जोर की रोशनी फेंकी जाती है) की सहायता से बांधा जाता है। यह आकाश युद्ध के कुछ प्रसिद्ध अस्त्र-शस्त्रों का संक्षिप्त वर्णन है।

पुस्तक के इस पहले भाग में ये दर्शाया गया है कि किस प्रकार मनुष्य की दो प्रवृत्तियां—जिज्ञासा तथा आधिपत्य—काम करती हैं। जिज्ञासा भावना से प्रेरित होकर उसने संसार की प्रत्येक वस्तु की छान-बीन की और उसका मूलतत्व समझने का प्रयत्न किया। इन प्रयत्नों के फल अद्भुत आविष्कारों तथा अन्वेषणों के रूप में हमारे सामने हैं। परन्तु पहली प्रवृत्ति ने उसे जितना परोपकारी सुखद तथा लोक हितैषी बनाया, दूसरी ने उसे उतना ही क्रूर, स्वार्थी तथा घातक बना दिया, मानवी बुद्धि ने दोनों कार्यों में अपनी पराकाष्ठा सिद्ध की। निर्माण की ओर जहां रेडियो, विमान तथा गाड़ियों आदि के आविष्कार ने इतने विस्तृत जगत् को एक कुटुम्ब बना दिया, वहां परमाणु बम, जहरीली गैसों ने परस्पर भय और वैमनस्यों को जन्म दिया।

इनके अतिरिक्त एक और प्रवृत्ति भी मनुष्य के भीतर विद्यमान है। मनुष्य एक सामाजिक पशु है, वह एकांत में रहना

पसन्द नहीं करता है । वह दूसरे के साथ मिल-जुल कर रहना चाहता है। प्रत्येक मनुष्य संसार को दो विभागों में विभक्त करता है। एक वह भाग जिसको वह अपना कहता है, और दूसरा वह जिसको वह पराया समझता है। जिसको वह अपना समझता है, उस पर वह अपना आधिपत्य जमाए रखने का भरसक प्रयत्न करता है और उसकी रक्षा के लिए जान पर खेल जाता है। जिसको वह पराया समझता है उस पर भी अपने स्वभाव से प्रेरित होकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है। ये प्रवृत्ति व्यक्तियों और जातियों में लड़ाई तथा कोलाहल का साधन बन जाती है।

सामाजिक शान्ति और सुख के लिए आवश्यक है कि जहां प्रत्येक मनुष्य को अपने-अपने अधिकारों का पूरा ज्ञान हो वहां दूसरी ओर उसको अपने कर्तव्यों का भी पूरा-पूरा ज्ञान हो। सामाजिक शांति के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य दूसरों के अधिकारों पर छापा मारने की कुचेष्टा और कुप्रयत्न न करे। प्रत्येक मनुष्य के अधिकारों की रक्षा की जाय और इसके विपरीत कार्यों को रोका जाय। इस प्रबन्ध को शासन-प्रणाली का नाम दिया जाता है। भिन्न-भिन्न देशवासियों ने अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार का शासन-प्रबन्ध अपने देश में स्थापित किया है। भारतवर्ष की शासन-प्रणाली क्या है ? इसका वर्णन संक्षेप से इस पुस्तक के पूर्वार्ध में किया गया है।

अधिकार तथा कर्तव्य क्या होंगे ?

२०. भारतवर्ष में कुल कितने प्रान्त हैं ? उनके नाम लिखो। उनकी शासन-पद्धति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

२१. प्रान्तीय-शासन के मुख्य कौन-कौन-से विभाग हैं ? धनका प्रबन्ध किस तरह होता है ?

२२. भारत में सब से बड़ी अदालत कौन-सी है ? उसकी कैसी रचना है और क्या उसका कर्तव्य है ?

२३. प्रान्तों की बड़ी अदालत का नाम लिखो। उनके अधीन अन्य कौन सी अदालतें हैं ? प्रान्तों में न्याय-शासन के प्रबन्ध पर प्रकाश डालो।

२४. इन पर टिप्पणियाँ लिखो—प्रिवी-कौंसिल, फिडरलकोर्ट, सेशन-जज, दीवानी मुकदमे, बैरिस्टर।

२५. स्वतन्त्र भारत में रियासतों की शासन-प्रणाली में क्या परिवर्तन हुआ है ? इस परिवर्त्तन के क्या कारण है ?

२६. स्वतन्त्रता के बाद अब कौन-कौन सी रियासतें अपने रूप में अवशिष्ट हैं ? कौन-कौन संयुक्त रूप में हो गई हैं ? पंजाब में संयुक्त-रूप का क्या नाम है, और उसका शासन कैसे होता है ?

२७. साम्यवाद-सिद्धान्त का निरूपण करो और उसके भिन्न-भिन्न प्रकारों का स्पष्टीकरण करो। अपने देश के लिए साम्यवाद की उपयोगिता पर प्रकाश डालो।

२८. भारतवर्ष की निर्धनता के निराकरण का एक-मात्र उपाय साम्यवाद है,—इस विचार से तुम कहाँ तक सहमत हो ?

२९. एकसत्तावाद का इटली एवं जर्मनी में उदय क्योंकर हुआ ? उसके ह्रास के कारण लिखो। इस सिद्धान्त की संक्षेप में समालोचना करो।

३०. क्या भारतवर्ष में एकतन्त्रवाद को अपनाने से अधिक उन्नति की सम्भावना है ? जनतन्त्र-प्रणाली के साथ इसकी तुलना करो।

३१. संयुक्त-राष्ट्र-संघ(U. N. O) के बारे में तुम क्या जानते हो ? क्या यह संसार में शान्ति स्थापित करने में सफल हो सकेगा ?

३२. 'परस्पर निरन्तर लड़ते हुए जातीय राष्ट्र अवश्य एक दिन विश्व-राष्ट्र का संगठन कर लेंगे'—इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकाशित करो।

"भौतिक—विज्ञान"

३३. विशाल विश्व में मनुष्य के अस्तित्व पर अपने विचार प्रकाशित करो। क्या मनुष्य सर्वथा असहाय प्राणी है। या प्रकृति का विजेता बनकर रह सकता है ?

३४. स्थल-यात्रा के लिए मनुष्य ने कौन-कौन से साधनों का आविष्कार किया है ? किन-किन वैज्ञानिकों को इस सम्बन्ध में श्रेय प्राप्त है ?

३५. वायुयान का आविष्कार कैसे हुआ ? उस की उपयोगिता पर संक्षिप्त निबंध लिखो।

३६. इन आविष्कारों के सिद्धान्तों को स्पष्ट करो—अणुवीक्षण-यन्त्र, क्ष-किरण, दूर-दर्शक।

३७. बिजली का उपयोग मनुष्य ने कैसे-कैसे किया ? बिजली सम्बन्धी कुछ आविष्कारों का वर्णन करो।

३८. रेडियो तथा बोल-चित्रपट के सिद्धान्तों को संक्षेप में समझाओ। इन से संसार का क्या उपकार हुआ है ?

३६. विज्ञान का मनुष्य-बुद्धि ने किस प्रकार दुरुप
है ?

४०. जल-युद्ध के भिन्न-भिन्न भीषण आविष्कारों का
वर्णन करो ।

४१. आकाश युद्ध के सम्बन्ध में किन नए अस्त्र-शस्त्र
आविष्कार हुआ है ? परमाणु बम का विशेष उल्लेख
हुए उसका सिद्धान्त स्पष्ट करो ।